योगिराज

तैलंगस्वामी

विश्वनाथ मुखर्जी

योगिराज तैलंग स्वामी

लेखक

विश्वनाथ मुखर्जी

अप्र

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

YOGĪRĀJA TAILANGA SWĀMĪ

[*Category* : Spiritual Personalities]

by

Vishwanath Mukherji

ISBN : 978-81-89498-62-7

पंचम संस्करण : 2017 ई०

[5th Edition : 2017]

Publisher	*प्रकाशक*
ANURAG PRAKASHAN	**अनुराग प्रकाशन**
Chowk, Varanasi - 221001	चौक, वाराणसी-221 001
[U.P. INDIA]	[उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2421472

E-mail : vvpbooks@gmail.com • sales@vvpbooks.com

Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

स्वर्गीय मुरारीलाल केडिया

एवं

स्व० राधेश्याम सराफ की

पुण्यस्मृति को

दो शब्द

अनादिकाल से काशी साधकों के निकट साधना-भूमि रही है । बुद्ध से लेकर स्वामी विशुद्धानन्द तक यहाँ निवास करते रहे ।

तैलंग स्वामी एक ऐसे योगिराज थे जो २८० वर्ष तक जीवित रहे । सन् १७३७ ई० से १८८७ ई० तक यानी पूरे १५० वर्ष तक वे काशी में थे । आपकी योग विभूतियों से प्रभावित होकर नगर के लोग उन्हें साक्षात् विश्वनाथ समझते थे । तैलंग स्वामी की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि आपने न किसी मठ की स्थापना की और न अपने नाम से सम्प्रदाय चलाया । यहाँ तक कि आपके शिष्यों की संख्या भी नगण्य रही ।

महात्मा तैलंग स्वामी के सम्बन्ध में बंगला में सर्वप्रथम पुस्तक श्री नारायणचन्द्र दास ने लिखकर छपवायी । यह १६वीं शताब्दी के अन्त या बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की घटना है । सन् १६१८ में स्वामीजी के अन्तिम गृहस्थ शिष्य श्री उमाचरण मुखोपाध्याय ने 'महात्मा तैलंग स्वामीर जीवन चरित ओ तत्त्वोपदेश' लिखकर छपवायी । श्री मुखोपाध्याय यह स्वीकार करते हैं कि संस्मरण के अलावा जीवनी का अंश उन्होंने स्वामीजी के द्वितीय शिष्य कालीचरण स्वामी से जबानी प्राप्त किया है जब कि नारायणचन्द्र दास की पुस्तक में ये सारी बातें हैं ।

इन्हीं दो पुस्तकों के आधार पर बंगला में सर्वश्री सुरेन्द्रकुमार सेनगुप्ता, रमेन गुप्त, नवकुमार विश्वास, अमरेन्द्रकुमार घोष, स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती तथा स्वामी परमानन्द सरस्वती (आप तैलंग स्वामी की शिष्या शंकरी माता के शिष्य थे, आपने उमाचरणजी की पुस्तक में वर्णित अनेक बातों का खण्डन किया है ।) आदि ने पुस्तकें लिखी हैं ।

श्री उमाचरण मुखोपाध्याय की पुस्तक के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन काशी के ही किसी सज्ञन ने किया था, जो एक अर्से से अप्राप्त है । उस अभाव की पूर्ति इस पुस्तक के माध्यम से की गयी है । विश्वास है कि योगिराज तैलंग स्वामी के भक्तों तथा जिज्ञासुओं को यह कृति पसन्द आयेगी ।

—प्रकाशक

योगिराज तैलंग स्वामी

श्री श्री तैलंग स्वामी

दक्षिण भारत के पूर्वी तट पर स्थित विशाखापत्तनम् बन्दरगाह का नामकरण शिव के पुत्र देव सेनापति कार्त्तिकेय के नाम पर हुआ है । अमरकोश में है— 'बाहुलेयस्तारकजि-द्विशाखः शिखिवाहनः षाण्मातुरः शक्तिधरः, कुमारः क्रोंचदारणाः' । कार्तिक का एक नाम विशाख भी है । दक्षिण भारत में गणेश की अपेक्षा कार्त्तिकेय की पूजा सर्वमान्य है ।

इसी प्रदेश के अन्तर्गत विजना जनपद के एक गाँव का नाम होलिया था । गाँव के जमींदार नृसिंहधर थे । इनकी कोठी गाँव के एक छोर पर थी जो ऊँचे टीले पर होने के कारण दूर से दिखाई दे रही थी । इनके पूर्वजों द्वारा निर्मित एक तालाब और शिव मन्दिर भी कोठी के पास था । कोठी के आस-पास एक विशाल बरगद के अलावा पीपल और आम के कई वृक्ष थे । कोठी के बरामदे से सम्पूर्ण गाँव का दृश्य अपूर्व दिखाई देता था ।

नृसिंह की पत्नी विद्यावती देवी धार्मिक प्रवृत्ति की विदुषी महिला थीं । नित्य शिव की पूजा किये बिना वे जल ग्रहण नहीं करती थीं । अपने मधुर स्वभाव और दयालु प्रकृति की होने के कारण घर की नौकरानियों तथा प्रजा में लोकप्रिय थीं । कभी किसी से रूढ़ व्यवहार नहीं करती थीं । इस परिवार को केवल एक ही कष्ट था । विवाह के आठ-साल गुजर गये, अभी तक इन्हें सन्तान का मुँह देखने का अवसर नहीं मिला । सन्तान का अभाव इन्हें रह-रहकर पीड़ा देती थी ।

अपुत्रक होने के कारण अधिकांश लोग प्रातः इस दम्पती की शक्ल देखने से कतराते थे । अभी दो वर्ष पहले एक ऐसी घटना हो गयी थी जिसके कारण नृसिंह को बुरी तरह अपमानित होना पड़ा था । पुत्र प्राप्ति के लिए विजयवाड़ा के एक तांत्रिक के कहने पर नृसिंह ने तांत्रिक-पूजा का आयोजन किया । पूजन के पश्चात् बड़े समारोह के साथ आयोजन में भाग लेनेवालों के अलावा निमंत्रित ब्राह्मणों को भोजन कराया गया । विदाई के समय परम्परा के अनुसार जब उन्हें दान-दक्षिणा देने की नौबत आयी तब ब्राह्मणों ने दान लेना अस्वीकार कर दिया । नृसिंह के प्रश्न करने पर एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण ने कहा—"पण्डितजी, यज्ञ के पश्चात् आपका अन्न हम लोगों ने अवश्य ग्रहण किया, क्योंकि यह देवभोग था । अगर उसे ग्रहण न करते तो यज्ञ का फल वृथा हो जाता, किन्तु यह दान-दक्षिणा आपकी देन है । अपुत्रक का दान लेने से हमारा अकल्याण होगा । हम आशीर्वाद देते हैं कि आप सुसन्तान के पिता बने ।"

इस कड़वे सत्य को सुनकर अपमान और क्रोध से उनकी आकृति लाल हो उठी । अपनी उस पीड़ा को भुलाने के लिए वे कोठी के भीतर चले गये । इस बात से पति को कितना मानसिक आघात लगा है, इसे विद्यावती ने अनुभव कर लिया । उसे लगा जैसे आज का यह सारा आयोजन निष्फल हो गया । पत्नी की सार्थकता इसी में है कि पति का सारा सुख-दुःख बांट ले, वह माँ बने, श्वसुर-कुल को वंशधर दे, अपने बांझपन के कलंक को मिटाये ।

कई दिनों तक दोनों मानसिक घुटन में अशान्त रहे । आखिर एक दिन विद्यावती ने कहा—"मेरा एक अनुरोध स्वीकार कर लो । तुम एक विवाह और कर लो । मैं तुम्हें पिता बनने का गौरव प्रदान नहीं कर सकती ।"

नृसिंहधर पत्नी के इस प्रस्ताव को सुनकर अवाक् रह गये । विवाह के बाद से आज तक विद्यावती के मृदुल स्वभाव और सेवा से वे इतने प्रसन्न थे कि कभी परायी औरत की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं । मन ही मन उसे असीम प्यार करते आये हैं और आज वही अपने प्यार का बंटवारा करने आयी है । उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । बात बढ़ती गयी और अन्त में विद्यावती ने अन्न-जल का त्याग कर दिया । लाचारी में नृसिंह को झुकना पड़ा । इस प्रकार घर में दूसरी बहू आयी । धीरे-धीरे घर की सारी जिम्मेदारियाँ छोटी बहू को सौंपकर विद्यावती पूजा-पाठ में अधिक ध्यान देने लगी । अपनी सौत के प्यार से छोटी बहू मुग्ध हो गयी । विद्यावती मन ही मन कल्पना करती रही कि नयी बहू इस परिवार को वंशधर अवश्य देगी ।

नित्य की तरह उस दिन विद्यावती मन्दिर में जब पूजा करने आयी तो देखा—दरवाजे के पास एक गोरा-चिट्टा-सा-बालक बैठा है । विद्यावती ने गौर से बालक को देखा—भोला-भाला चेहरा, बड़ी-बड़ी निर्दोष आँखें, बिल्कुल अपरिचित सा लगा । मधुर स्वर में उसने पूछा—"कहाँ रहते हो, बेटा ? यहाँ क्यों बैठे हो ?"

बालक ने कहा—"मुझे प्रसाद चाहिए मालकिन ।"

विद्यावती ने सोचा—शायद किसी किसान का बेटा है । बोली—"अच्छी बात है । पूजा कर लूं तब प्रसाद दूंगी । चुपचाप बैठे रहो । जाना मत ।"

पूजा समाप्त कर विद्यावती जब बाहर आयी तब देखा—बालक गायब है । उसकी आँखें मंदिर के आस-पास, दूर पगडंडियों से टकराकर वापस आ गयीं । आवाज देने पर भी बालक सामने नहीं आया । दूसरे दिन भोर के समय विद्यावती ने स्वप्न में देखा कि एक सफेद हाथी उसके शरीर में आकर प्रवेश कर गया । यह दृश्य देखते ही वह चौंक उठी और नींद उचट गयी । नींद खुलने पर उसने देखा कि पास ही पतिदेव सो रहे हैं ।[१]

दोपहर को भोजन के समय इन दोनों घटनाओं का जिक्र करने पर नृसिंह ने कहा—"है तो शुभ संकेत, आगे क्या होगा, इसके लिए हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । संभव है कि कोई अनहोनी घटना हो ।"

---

१. श्री श्री तैलंग स्वामी, श्री अमरेन्द्र घोष ।

दो माह बाद विद्यावती ने अपने पति को सूचना दी कि वह गर्भवती हो गयी है । आजकल स्वप्न में शंकर भगवान् अक्सर दिखाई देते हैं । यह समाचार सुनते ही नृसिंहधर की आँखें प्रसन्नता से नाच उठीं । बोले—"स्वप्न में तुमने सफेद हाथी देखा था, वह शुभ संकेत इसी का फल है ।"

जनवरी माह, सन् १६०७ ई० (पौष शुक्ल एकादशी, रोहिणी नक्षत्र) को नृसिंहधर के यहाँ एक दिव्य शिशु ने जन्म लिया । जमींदार की कोठी से मंगल ध्वनि हवा में तैरती हुए पूरे गाँव में गूंजने लगी । गाँव के लोगों को ज्ञात हो गया कि जमींदार के यहाँ संतान ने जन्म लिया है । कई दिनों तक गाँव में उत्सव मनाया गया ।

छठवें दिन अशौच-स्नान करने के बाद बच्चे को लेकर विद्यावती मन्दिर में आयी । मन्दिर के बाहर बरामदे में बालक को लिटाकर वह भीतर जाकर पूजा करने लगी । पूजा समाप्त होनेवाली थी कि अचानक विद्यावती ने देखा—शिवलिंग के भीतर से अग्निशिखा की तरह एक ज्वाला प्रकट हुई । वह ज्वाला सम्पूर्ण मन्दिर में चमत्कृत करती हुई बरामदे में लेटे हुए बालक में जाकर समा गयी । यह देखकर भय से विद्यावती का कलेजा सूख गया । झट बच्चे को गोद में उठाकर चूमने लगी । सांवला रंग, दीर्घकाय, बड़ी-बड़ी आँखें, भरा-भरा चेहरा जैसे कुछ गोपनीय बात कहना चाहता हो, पर कह नहीं पा रहा है । इस घटना की चर्चा पति से करने पर उन्होंने कहा—"शिवजी की आराधना से तुमने इस बालक को पाया है । शायद शंकर भगवान् ने इस पर कृपा की है । जब कोई अनहोनी घटना नहीं हुई है तब चिन्तित होने की जरूरत नहीं ।"

नामकरण के दिन विद्यावती ने बालक का नाम रखा—शिवराम और पिता ने वंश परम्परा के अनुसार तैलंगधर । माता-पिता की छत्रछाया में बालक दूज की चाँद की तरह बड़ा होता गया ।

कुछ दिनों बाद दूसरी पत्नी ने एक बालक को जन्म दिया । जो परिवार एक अर्से से सन्तान के लिए तरस रहा था, आज उसके यहाँ दो-दो बच्चे थे । विद्यावती ने अनुभव किया कि इस परिवार में नयी बहू का आगमन शुभ हुआ है । सम्भवतः इसी के सौभाग्य से वह माँ बन सकी है । अब यह अपनी सौत का ख्याल पहले की अपेक्षा अधिक करने लगी । दूसरे बच्चे का नाम रखा गया—श्रीधर ।

समय गुजरता गया । दोनों बालक बड़े होते गये । शिक्षा काल में दोनों ही अपनी प्रतिभा का परिचय देते रहे । एक बार जो कुछ सुन या पढ़ लेते थे, वह कण्ठस्थ हो जाता था । अपनी असाधारण मेघा-शक्ति के कारण दोनों भाई बहुत शीघ्र नाना शास्त्रों में पारंगत हो गये । शिवराम में एक विशेषता यह थी कि सभी विषयों में तेज रहने पर भी उसमें बाल सुलभ-चंचलता नहीं थी जबकि श्रीधर गांव के हमजोलियों के साथ खेलता, कूदता और हुड़दंग मचाता था । उस समय शिवराम मन्दिर के प्रांगण में अकेला चुपचाप बैठा एक टक आकाश की ओर या शिवलिंग को निहारा करता था । कभी-कभी बरगद के नीचे समाधिस्थ हो जाता था ।

लड़के का रंग-ढंग देखकर विद्यावती उदास हो जाया करती थी । अक्सर उसे समझाने पर उत्तर मिलता—"मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता ।"

इन्हीं दिनों एक विचित्र घटना हो गयी । शिवराम इतना लापरवाह था कि उसे नहाने-खाने की चिन्ता नहीं रहती थी । उसे डांट-डपटकर काम करवाना पड़ता था । एक दिन जब भोजन के समय वह दिखाई नहीं दिया तब माँ खिड़की के अन्दर से देखा वह पेड़ के नीचे आँखें बन्द किये बैठा है । वह आवाज देने ही जा रही थी कि मुँह की आवाज भीतर ही रह गयी । शिवराम के पीछे एक सांप फन उठाये हवा में झूम रहा था । वह बदहवास की तरह दौड़ी हुई बाहर आयी । पास आने पर देखा—शिवराम पहले की तरह ध्यानस्थ है, पर सांप का पता नहीं । चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखने पर उसका कोई चिह्न तक नहीं मिला ।

क्या यह मेरी आँखों का भ्रम था ? वह स्तब्ध होकर सोचने लगी । फिर धीरे से पुकारा—"शिवराम, चलो खाना खा लो ।"

शिवराम ने मुस्कराते हुए आँखें खोली और माँ के साथ कोठी में आ गया । इस घटना के बाद से विद्यावती अपने बच्चे पर अधिक ध्यान देने लगी । समय गुजरता रहा । नृसिंह पर वार्ध्यक्य का प्रभाव पड़ने लगा । उन्होंने सोचा—शिवराम का विवाह करके जमींदारी का सारा भार धीरे-धीरे उसे समझा दें ताकि दोनों भाई काम-काज सम्हाले । उन्होंने कुल पुरोहित को बुलाक़र जन्म कुण्डली दिखाई ।

जन्म कुण्डली गौर से देखने के बाद कुल पुरोहित ने कहा—"जातक की कुण्डली असाधारण है । ऐसी कुण्डली आज तक मेरे देखने में नहीं आयी । इस बालक के कारण धर-वंश की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण विश्व में फैलेगी । बालक ब्रह्मतत्त्व ज्ञानी और योगीपुरुष होगा, परन्तु गृहत्यागी होगा ।"

अन्तिम बात सुनते ही नृसिंहधर चौंक उठे । कहाँ इस बालक के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ कर रहे हैं और कहाँ यह गृहत्यागी होगा । उन्होंने पूछा—"गृहत्यागी होगा का क्या मतलब है ? हम तो उसके विवाह के बारे में सोच रहे हैं । क्या घर से भाग जायगा ?"

कुल पुरोहित ने कहा—"यह बताना कठिन है, पर यह बालक गृहत्यागी होकर सन्त बनेगा । गृहस्थी के प्रति मन में वैराग्य उत्पन्न होगा । यद्यपि इसमें अभी विलम्ब है । मेरी राय में इसका क्विाह कर दीजिए । पत्नी के मोहपाश से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी अपना दामन नहीं छुड़ा सके, फिर यह तो सामान्य बालक है ।"

नृसिंह को यह सुझाव पसन्द आ गया । वे शिवराम के लिए योग्य लड़की की तलाश करने लगे । शिवराम से यह बात छिपी नहीं रह सकी । वह पिता का बहुत सम्मान करता था । उनके पास जाकर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ । माँ से उसने कहा—"माँ, मैं विवाह नहीं करूंगा । आप पिताजी से कह दीजिए कि वे इसके लिए प्रयत्न न करें ।"

विद्यावती विस्मित होकर बोली—"विवाह क्यों नहीं करेगा ? क्या बात है ?"

शिवराम ने कहा—"इस क्षणभंगुर नश्वर-शरीर का कोई भरोसा नहीं तब क्यों मायाजाल में आबद्ध होने जाऊँ ? जो अविनश्वर हैं, चिरस्थायी हैं, उन्हीं के अनुसंधान में अपना ध्यान लगाऊँगा । अगर मुझे तंग करोगी तो फिर कभी मेरा मुँह नहीं देख सकोगी । मुझे मेरी हालत पर छोड़ दो ।"

अपने ही बच्चे के मुँह से इस तरह की बातें सुनकर विद्यावती दंग रह गयी । विद्यावती अत्यन्त बुद्धिमती महिला थी । समझते देर नहीं लगी कि शिवराम की इच्छा के विपरीत कुछ किया गया तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है । विवाह नहीं करना चाहता तो न करे, पर नजरों के सामने बना तो रहेगा ।

उसी दिन विद्यावती अपने पति को समझाती हुई बोली—"शिवराम विवाह नहीं करना चाहता । आपसे कुछ कहने का साहस उसे नहीं हुआ । जिस ढंग से उसने अस्वीकार किया, उससे लगता है कि कहीं कुछ अनर्थ न कर बैठे । इतने दिनों बाद भगवान् ने एक लड़का दिया, कहीं वह भी भाग गया तो मैं मर जाऊँगी ।"

नृसिंह को इसी बात की आशंका थी । उन्होंने कहा—"आखिर उसे किस बात पर आपत्ति है, फिर यह धर-वंश कैसे चलेगा ?"

विद्यावती ने कहा—"शिवराम विवाह नहीं करना चाहता, न करे । धर-वंश की रक्षा के लिए आप श्रीधर का विवाह कर दें । शिवराम के भाग्य में जो होना है, वह होकर ही रहेगा । इस लड़के के जन्म से लेकर अब तक अक्सर विचित्र घटनाएँ होती आ रही हैं । सारी बातें आपसे इसलिए नहीं कहती ताकि मुझे आप पागल न समझें ।"

नृसिंह ने प्रश्न किया कि क्या इधर कोई नयी बात हुई थी । विद्यावती ने सांपवाली घटना सुनाते हुए कहा—"लगता है, हमारा शिवराम साधारण मानव नहीं है । शंकर भगवान् का कुछ अंश इसमें आ गया है ।"

प्रत्युत्तर में नृसिंह ने कुछ नहीं कहा । वे पत्नी के विश्वास पर आघात नहीं करना चाहते थे । उन्हें इतना अनुभव हो गया कि लम्बे अर्से के बाद माँ बनने के कारण शिवराम पर इसकी ममता अधिक हो गयी है । कुछ दिनों बाद बड़े समारोह के साथ श्रीधर का विवाह हो गया ।[1]

---

1. स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ने लिखा है कि तैलंग स्वामी का विवाह हुआ था और वे एक पुत्र तथा एक पुत्री के पिता बने थे । स्वामीजी को यह विवरण कहाँ से मिला, इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है । स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती के इस कथन को श्री अमरेन्द्र घोष ने सत्य मानकर तैलंग स्वामी की जीवनी में उल्लेख किया है ।

   काशी के प्रसिद्ध रुद्राक्ष माला विक्रेता श्री निवारणचन्द्र दास ने महात्मा तैलंग स्वामी की जीवनी लिखकर छपवायी थी । यह बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की बात है । आगे चलकर अधिकांश जीवनियां इसी पुस्तिका के आधार पर लिखी गयीं ।

   तैलंग स्वामी की शिष्या शंकरी माता तथा स्वामीजी के अन्तिम शिष्य श्री उमाचरण मुखोपाध्याय उन्हें बाल ब्रह्मचारी मानते हैं । यह सही है कि भारत के अनके महान् योगी विवाहित थे । सर्वश्री रामकृष्ण परमहंस, श्यामाचरण लाहिड़ी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, स्वामी ब्रह्मानन्द, सीताराम ओंकारनाथ, अनुकूलचन्द्र ठाकुर के अलावा अन्य अनेक थे, पर तैलंग स्वामी विवाहित थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है ।

शिवराम को बेकार का पुत्र समझकर नृसिंह जमींदारी का सारा काम श्रीधर को सिखाने लगे । विद्यावती अपने बेटे को लेकर पूजा-पाठ तथा भजन में समय गुजारने लगी । माँ और बेटे की एक नयी दुनिया बस गयी । समय ज्यों-ज्यों गुजर रहा था त्यों-त्यों शिवराम की वाक् चातुर्यता पर विद्यावती का विस्मय बढ़ता जा रहा था ।

किशोर बालक ने एक दिन प्रश्न किया—"माँ, भगवान् पूजा से प्रसन्न होते हैं या भक्ति से ?"

विद्यावती ने कहा—"पूजा से भक्ति उत्पन्न होती है । पहले भगवान् की सेवा हृदय से करनी चाहिए । सेवा से भक्ति दृढ़ होती है । आध्यात्मिक जीवन का विकास होता है । गीता में कहा गया है—पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो में भक्तया प्रयच्छति । अगर हृदय की सरल भक्ति दी जाय तो उसे भगवान् ग्रहण करते हैं । भक्त को जो अच्छा लगता है, भगवान् को वही प्यारा लगता है । भगवान् शिव हमारे कुल देवता हैं । इनकी कृपा से मैंने तुम्हें पाया है । ये अवढरदानी हैं । जिस दिन वे अपने भक्त पर प्रसन्न हो जाते हैं, वह जो कुछ चाहता है उसे मिल जाता है । लेकिन इसके लिए शुद्ध भक्ति चाहिए । शुद्ध भक्ति के लिए साधना करनी पड़ती है तब ज्ञान प्राप्त होता है । यह ज्ञान गुरु प्रदान करते हैं । वास्तविक गुरु से ज्ञान प्राप्त करने पर ही साधना सफल होती है ।"

इसी प्रकार की बातें माँ-बेटे में प्रायः होती रहती थीं । सच तो यह है कि शिवराम का प्राथमिक गुरु उनकी माँ थीं । स्वयं शिवराम ने ही एक दिन माँ से कहा था—"जब तुम इतनी बातें बताती हो, तब मुझे वह ज्ञान क्यों नहीं देती । माँ से बढ़कर भला मुझे कौन गुरु मिलेगा ?"

विद्यावती ने कहा—"बात तुम्हारी सत्य है, परन्तु मैं तुम्हारा गुरु नहीं बन सकती । तुम्हारे जो गुरु हैं वे समय आने पर तुम्हें अपने पास बुला लेंगे अथवा स्वयं तुम्हारे पास आ जायँगे । इसके लिए तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । कोई भी व्यक्ति किसी का गुरु नहीं बन सकता । कोई भी गुरु हर किसी को दीक्षा नहीं देता । ईश्वर जब गुरु को प्रेरित करते हैं तब गुरु पात्र की योग्यता के आधार पर दीक्षा देते हैं । गुरु अपनी ऐशी शक्ति से शिष्य की योग्यता को परखते हैं, क्योंकि शिष्य की लापरवाही की पूर्ति गुरु को करनी पड़ती है । यही वजह है कि दूरदर्शी गुरु सभी को दीक्षा नहीं देते ।"

इसी प्रकार माँ अपने बेटे को ज्ञान प्रदान करती रहीं । नृसिंह छोटे पुत्र को जमींदारी की देखभाल तथा सामाजिक बातों में व्यस्त रखते थे । जीवन के दिन इसी प्रकार व्यतीत हो रहे थे । सहसा इस परिवार में वज्रपात हुआ । नृसिंह एक अर्से से अस्वस्थ चल रहे थे । अचानक एक दिन उनकी तबीयत अधिक खराब हो गयी । विद्यावती के साथ-साथ शिवराम अपने पिता की सेवा में लग गया । जो लड़का दिन-रात बाहर रहता है या माँ के पास बैठा बातें करता है, उसकी अक्लान्त सेवा को देखकर सभी चकित रह गये । फिर भी नृसिंह को बचाया नहीं जा सका ।

पांचवें दिन उनका निधन हो गया । उन दिनों शिवराम की उम्र ४० वर्ष थी और श्रीधर उससे दो वर्ष छोटे थे । यह सन् १६४७ ई० की घटना है ।

पति के निधन के बाद से विद्यावती का अधिकांश समय पूजा-पाठ या शिवराम से धार्मिक-चर्चा करने में गुजरने लगा । गृहस्थी का सारा भार श्रीधर की माँ सम्हालने लगी । माँ के दुःख को भुलाने के लिए शिवराम निरन्तर प्रयत्न में लगा रहा । सन् १६५७ ई० में विद्यावती भी चल बसी । पिता के प्रति श्रद्धा रखते हुए शिवराम हमेशा उनसे दूर-दूर रहता था, पर माँ हमेशा उसे अपने आंचल की साया में रखती रही । पिता के निधन के पश्चात् से माँ-बेटे में निबिड़ता बढ़ गयी थी । वृद्धा माता की सेवा करते-करते उनके प्रति ममता अधिक हो गयी थी, इसीलिए माँ के निधन का गहरा आघात शिवराम ने महसूस किया ।

विद्यावती के निधन से पूरा गांव शोकाकुल हो उठा । चिता में अग्नि देने के बाद शिवराम वहीं बैठ गया । शवयात्री एक-एक कर जाने लगे । श्रीधर ने कहा—"भइया, चलो ।"

शिवराम ने कहा—"तुम माँ को लेकर चले जाओ । मुझे यहीं रहने दो । अब मैं उस घर में नहीं जाऊँगा ।"

श्रीधर की माँ ने विस्मित होकर कहा—"वह घर तो तुम्हारा भी है, बेटा । ऐसा नहीं कहते । चलो, उठो । लोग क्या कहेंगे ?"

शिवराम ने कहा—"नहीं माँ । मुझसे अब कोई अनुरोध मत करो । मुझे यहीं रहने दो । वहाँ माँ की याद बहुत सतायेगी । यहाँ लगता है जैसे मैं माँ के पास हूँ ।"

गाँव के बड़े-बूढ़ों ने समझाया । श्रीधर ने रोते हुए कहा—"मैं अकेला क्या-क्या करूंगा ? आप बड़े भाई हैं । पूरी जायदाद में आपका भी हिस्सा है । बिना आपके सहयोग के कैसे काम होगा ?"

शिवराम ने हाथ उठाकर कहा—"आज से सब कुछ तुम्हारा है । मैं कभी तुमसे अपना अधिकार मांगने नहीं जाऊंगा । मुझे कुछ नहीं लेना है । इस नश्वर शरीर के लिए एक मुट्ठी भोजन काफी है । वह कहीं से मिल ही जायगा । रहने के लिए इससे उपयुक्त स्थान अन्यत्र कहीं नहीं है ।"

श्रीधर क्षुब्ध होकर वापस चला गया । शिवराम चिता की राख सारे शरीर में पोतकर वहीं बैठा रहा । दोपहर को भोजन लेकर श्रीधर स्वयं आया ।

उसे शंका हुई कि कहीं भाई भोजन करने से इनकार न कर दें । गाँव के लोग कहेंगे कि माँ-बाप के निधन के पश्चात् सौतेले भाई से वह शत्रुवत व्यवहार करने लगा है । इस बार शिवराम ने विरोध नहीं किया । घर से फलाहार आया था । इस प्रकार घर से दोनों वक्त भोजन आता, वे खाते और श्मशान में कभी बैठे रहते और कभी सो जाते थे ।

वर्षा का मौसम आनेवाला था । बड़े भाई को कोई कष्ट न हो, यह सोचकर श्रीधर ने उनके लिए एक कुटिया बनवा दी । अनुरोध करने पर अब चिता की राख के पास से हटकर वे कुटिया में रहने लगे । लगभग बीस वर्ष तक एकान्त में माँ के निर्देशानुसार शिवराम साधना करते रहे । उन्हें विश्वास था कि माँ का कथन कभी झूठ नहीं होगा । कभी न कभी उनका वास्तविक गुरु उनके निकट आयेगा और उन्हें अपना लेगा ।

शिवराम इसी चिन्ता में दिन-रात अपनी साधना में लगे रहते थे । सन् १६७६ में एक दिन शाम के समय उनकी कुटिया के समीप एक संत का आगमन हुआ—

'जय शिव शंभो'—सन्त ने आवाज दी ।

शिवराम कुटिया के बाहर आये तो एक संन्यासी को सामने देख चौंक उठे—क्या यही मेरे वास्तविक गुरु हैं ? इस गाँव में ऐसा संत कभी नहीं आया । जो आते हैं, वे मधुकरी या भिक्षा गाँव के लोगों से माँगते हैं । इस सुनसान श्मशान-भूमि में आज

तक कोई नहीं आया । तभी सन्त ने कहा—"बेटा, रात भर के लिए क्या कुटिया में स्थान दोगे ? संन्यासी को गृहस्थों के यहाँ नहीं रहना चाहिए, इसलिए तुम्हारे पास आया हूँ ।"

शिवराम ने आकुल भाव से कहा—"आइये, आइये महाराज, आपका स्वागत है ।"

बातचीत के सिलसिले में सन्त ने बताया कि वे तीर्थयात्रा के सिलसिले में पिछले तीन सालों से घूम रहे हैं । अब यहाँ से उत्तर की ओर जायँगे । पंजाब के पटियाला जिले के रहने वाले हैं । नाम भगीरथ स्वामी है । थोड़ी देर बाद घर से भोजन आया । स्वामीजी को भरपेट खिलाने के बाद शिवराम ने प्रसाद ग्रहण किया ।

शिवराम की सेवा से भगीरथ स्वामी इतने सन्तुष्ट हुए कि रातभर विश्राम करने के बदले वे महीनों रुक गये । शिवराम ने इस बीच अनुभव किया कि स्वामीजी असाधारण हैं । ज्ञान का अपूर्व भण्डार इनके पास है । जब कभी स्वामीजी प्रस्थान की चर्चा करते तब शिवराम उन्हें आग्रह पूर्वक रोक लेता । आखिर एक दिन जब शिवराम से रहा नहीं गया तब उसने कहा—"महाराज, मुझे अपना शिष्य बनाकर रख लें । मैं आपकी सेवा करूँगा और आपके प्रवचनों से अपने ज्ञान की वृद्धि करूंगा ।"

भगीरथ स्वामी हंस पड़े । उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारे मन की बात समझ गया । तुम मुझसे दीक्षा लेना चाहते हो, पर अभी उसका समय नहीं आया है । समय आने पर यह क्रिया हो जायगी ।"

शिवराम ने सोचा—"स्वामीजी उसे टालना चाहते हैं । क्या ये मेरे वास्तविक गुरु नहीं हैं ?" प्रत्यक्ष रूप से उसने पूछा—"वह समय कब आयेगा, महाराज ? दीक्षा के लिए मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा है । इस वक्त आप जैसे ज्ञानी महात्मा अस्वीकार कर देंगे तो मैं कहाँ जाऊंगा ? कम-से-कम मुझे वास्तविक मार्ग दिखा दें ।"

भगीरथ स्वामी ने कहा—"तुम्हारी आकुलता का अनुभव मुझे भी हो रहा है, पर यह भगवत् कृपा के बिना नहीं हो सकता । दीक्षा सामान्य प्रक्रिया नहीं जो मांगने से तुरन्त प्राप्त हो जाय । गुरु तभी दीक्षा देते हैं जब यह देख लेते हैं कि दीक्षार्थी में भगवत् कृपा से शक्तिपात हो गया है । गुरु से दीक्षा लेने का अर्थ है—ज्ञान नेत्र का उन्मीलन । गुरु-कृपा से ही दीक्षार्थी का आवरण मुक्त होता है । लेकिन इसे वह तबतक अनुभव नहीं कर पाता जबतक उसका चित्त निर्मल नहीं हो जाता । सच पूछो तो तुम्हारे लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है । जब वह समय आयेगा तब बिना मांगे तुम्हें दीक्षा प्राप्त हो जायगी ।"

शिवराम ने विनय से कहा—"मैंने मन ही मन आपको गुरु मान लिया है । मेरी माँ ने कहा था कि एक दिन तुम्हारे वास्तविक गुरु यहाँ आयेंगे । इस गाँव में जो साधु-सन्त आते हैं, वे इस कोठी में नहीं आते । फिर श्मशान में कौन आता है । आपके अनायास आगमन से मैंने समझ लिया कि आप ही मेरे वास्तविक गुरु हैं । आज से मैं बराबर आपके साथ रहूँगा ।"

भगीरथ स्वामी बोले—"तुम्हारा अनुमान सत्य है, वर्ना अपने वास्तविक मार्ग से हटकर मैं यहाँ नहीं आता । अभी तक तुम अपने प्राथमिक गुरु अपनी माँ के निर्देश पर चल रहे थे । साधना के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अपना सर्वस्व गुरु को समर्पित कर उनकी शरण में जाना पड़ता है । स्मरण रहे कि गुरु से बढ़कर साधक के लिए दूसरा कोई नहीं होता, इसीलिए गुरु को साक्षात् परमब्रह्म कहा जाता है । उनकी कृपा से ही पूर्ण सत्य प्रत्यक्ष होता है । प्रत्यक्ष होने के बाद कोई आवरण नहीं रहता । जो इस आवरण को हटाने में सहायक होते हैं, वे ही वास्तविक गुरु हैं । जो इस आवरण को हटा नहीं पाते, उन्हें गुरु नहीं कहा जा सकता ।"

शिवराम ने कहा—"महाराज, मेरे उस आवरण को हटा देने की कृपा करें ताकि मैं समर्पित भाव से आपकी सेवा कर सकूँ ।"

"अभी तक तुममें ज्ञान का पूर्ण विकास नहीं हुआ है । साधना करते चलो, एक दिन सम्यक् ज्ञान का विकास होगा तब तुम पूर्ण होगे । शक्तिपात होते ही तुम्हें दीक्षा प्राप्त होगी, इसके पूर्व नहीं । इसके लिए तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी । दीक्षा प्राप्त कर लेने पर कुण्डलिनी का विकास प्रारम्भ हो जायगा । कुण्डलिनी के जागरण से आत्मदर्शन होगा । कुण्डलिनी के जागरण का अर्थ है—दीक्षा मंत्र का विकास । व्यर्थ का आग्रह करने से कोई लाभ नहीं होगा ।"

शिवराम ने सहसा एक बचकाना प्रश्न किया—"साधक क्या अपनी साधना के माध्यम से कुण्डलिनी जाग्रत नहीं कर सकता ?"

भगीरथ स्वामी ने कहा—"अभी तुमसे मैंने कहा न, कि व्यर्थ का आग्रह मत करो । साधक अपनी साधना से कुण्डलिनी जाग्रत जरूर कर सकता है, पर यह अत्यन्त कठिन कार्य है । गुरु से दीक्षा प्राप्त कर लेने पर शक्ति का संचार होता है । दीक्षा के पश्चात् गुरु प्रदत्त नित्य कर्म करते-करते जाग्रत शुद्ध तेज क्रमशः प्रज्वलित हो उठता है और साधक सत्तावाली वासना, संस्कारादि के मायिक आवरण को भस्म कर देता है । इस प्रकार साधक का उत्कर्ष होता है । सिद्धावस्था में समस्त वासना का क्षय हो जाता है और कुण्डलिनी शक्ति इष्ट देवता के रूप में प्रकट होती है ।"

इसी प्रकार नित्य भगीरथ स्वामी शिवराम को ज्ञान देते रहे ताकि वह क्रमशः अपने वास्तविक मार्ग पर अग्रसर हो सके । इसके बाद भगीरथ स्वामी उन्हें साथ लेकर होलिया गाँव से उत्तर की ओर रवाना हो गये । वे कब चले गये, इस बात की जानकारी श्रीधर को भी नहीं हुआ ।

एक अर्से तक विभिन्न स्थानों का चक्कर काटते हुए दोनों व्यक्ति पुष्कर तीर्थ आये । यह स्थान अजमेर से ७ मील दूर है । "पश्चिमायां विशालायं पुष्करेषु महात्मनः सुखं तपश्चरिष्यामः, सुखं तद्धि तपोवनम्, एवभुक्त्वा महातेजाः पुष्करेषु महामुनि, तप उग्रं दुराधर्ष तेपे मूलफलाशनः" के अनुसार यहाँ विश्वामित्र मुनि तपस्या करते थे । महाभारत में पुष्कर को महान् तीर्थ कहा है । विशेषरूप से यहाँ के नाग पहाड़ियों पर ऋषि लोग तपस्या करते थे । कहा जाता है कि सृष्टि रचना के पूर्व ब्रह्मा ने यहाँ

यज्ञ किया था, इसीलिए इस स्थान को ब्रह्म पुष्कर कहा जाता है । भारत में ब्रह्माजी का मन्दिर केवल इसी स्थान पर है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक इस क्षेत्र को सिद्धभूमि माना गया है ।

इस स्थान की चर्चा करते हुए भगीरथ स्वामी ने कहा—"यों सिद्ध तपस्वी जहाँ बैठकर तप या साधना करते हैं, वह स्थान सिद्धभूमि बन जाता है । किन्तु भारत में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ साधना करने से सिद्धभूमि का फल प्राप्त होता है । मानसरोवर, तिब्बत, काश्मीर, कामाख्या, वीरभूमि, गिरनार, प्रभास क्षेत्र, ज्वालामुखी आदि अनेक स्थान हैं । इनमें पुष्कर भी है । अब हम यहीं कुछ दिनों तक साधना करेंगे ।"

यहाँ लम्बे समय तक भगीरथ स्वामी के निर्देशन पर साधना करते समय शिवराम को यह अनुभव हो गया कि माँ का कथन सत्य था । भगीरथ स्वामी ही मेरे वास्तविक गुरु हैं जो भगवत्-प्रेरणा से होलिया आये थे । इनके साथ मेरा आना लाभप्रद हुआ ।

सन् १६८५ ई० में एक दिन शिवराम को भगीरथ स्वामी ने दीक्षा देकर बीज मंत्र दिया । दीक्षा के पश्चात् परम्परा के अनुसार शिवराम का नाम गणपति सरस्वती रखा गया । भगीरथ स्वामी दसनामी संन्यासियों की सरस्वती शाखा के संन्यासी थे ।
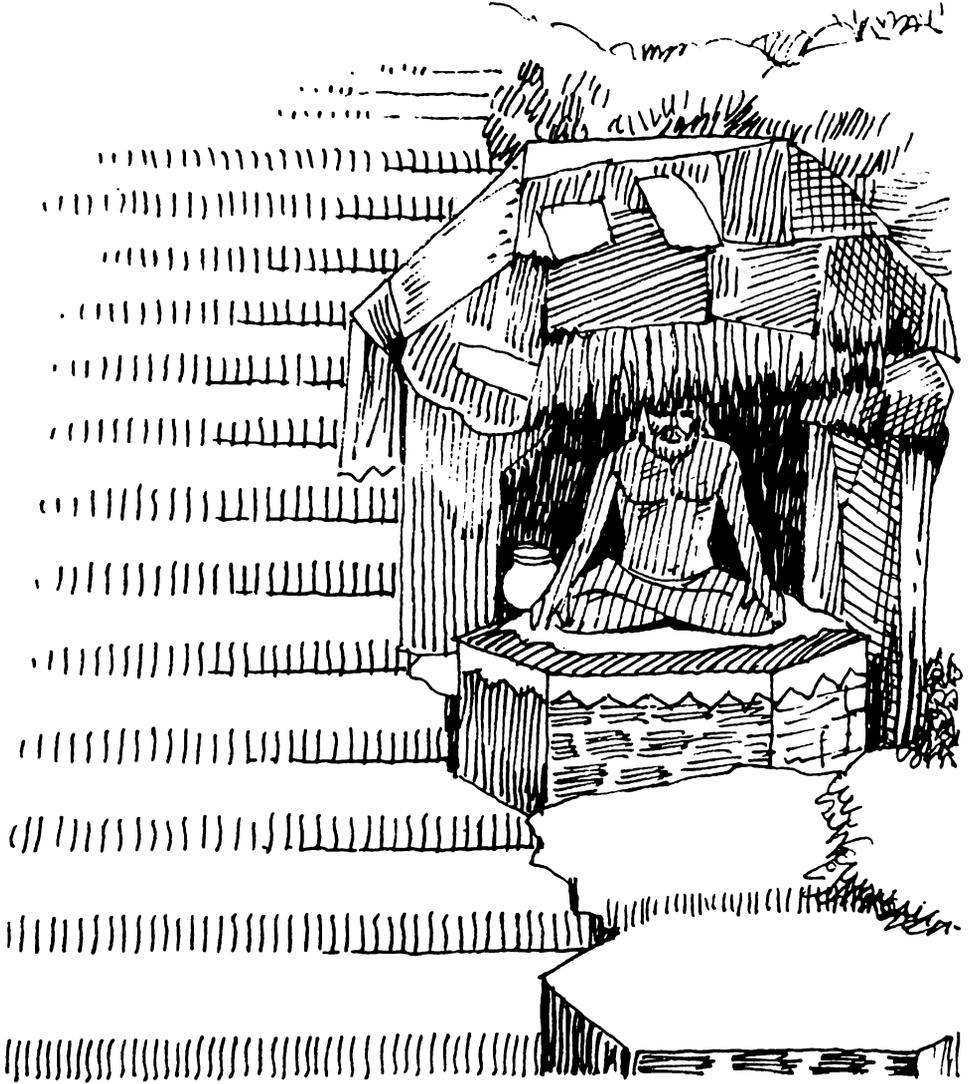
दीक्षा देने के बाद बीज मंत्र का जप तथा अन्य गुह्य रहस्यों की जानकारी गणपतिजी को अपने गुरुदेव से प्राप्त होने लगी । इस साधना का फल उन्हें निरन्तर प्राप्त होता गया । दस वर्ष के बाद सहसा भगीरथ स्वामी ने गणपति को अपने निकट बुलाकर कहा—"अब तुम पूर्ण हो गये हो मेरे पास देने को अब कुछ शेष नहीं रह गया जिसे मैंने तुम्हें न दिया हो । तुममें शक्ति का पूर्ण विकास हो गया है । यह स्मरण रखना कि भगवत्-कृपा से तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसका उपयोग कल्याण के लिए करना । अपनी शक्ति पर घमण्ड मत करना । परमेश्वर से बढ़कर इस जगत् में अन्य कोई सत्ता नहीं है । मैं अब तक इस शरीर को इसलिए नहीं छोड़ रहा था ताकि तुम्हें पूर्ण के रूप में देखूँ । मेरे जाने के बाद यहाँ रहने की आवश्यकता

नहीं है । तीर्थ यात्रा करो जैसा कि मैं करता था । मानसरोवर और हिमालय की यात्रा अवश्य करना वहाँ ऐसे अनेक तपस्वी हैं जिनके आशीर्वाद से तुम्हारा कल्याण होगा ।"

सन् १६६५ ई० के किसी दिन भगीरथ स्वामी अनन्तधाम चले गये । गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार गणपति तीर्थ यात्रा के लिए चल पड़े । उन्होंने निश्चय किया कि सबसे पहले दक्षिण भारत के प्रमुख तीर्थों का दर्शन करते हुए वे उत्तर की ओर आयेंगे । राजस्थान के पुष्कर से चलकर वे पुरी आये और फिर भारतीय समुद्र के पूर्वी तट के किनारे-किनारे बढ़ते हुए दो वर्ष बाद सन् १६६७ ई० के नवम्बर माह यानी कार्तिक मास की शुक्ला पंचमी को रामेश्वर मन्दिर में आये ।

भगवान् रामचन्द्र के नाम से जुड़े इस मन्दिर में प्रवेश करते ही गणपति स्वामी का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा । कार्तिक मास की शुक्ला पंचमी तिथि को रामेश्वर की पूजा बड़े समारोह के साथ होती है । इस दिन भारत के कोने-कोने से अगणित यात्री आते हैं । मेले में भिन्न भाषा-भाषी आपस में मिलते हैं ।

सहसा गणपति स्वामी को देखकर होलिया गाँव के लोग प्रसन्नता से नाच उठे । उन लोगों ने जिद्द पकड़ लिया कि अपने साथ तैलंगधर को गाँव वापस ले जायँगे । गणपति स्वामी ने कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर निकला हूँ होलिया जाना मेरे लिए संभव नहीं है । आप लोग मिल गये, मुझे होलिया का दर्शन हो गया । श्रीधर को मेरा आशीर्वाद कह दीजिएगा । इतना कहकर गणपति स्वामी आगे बढ़ गये ।

दूसरे दिन दोपहर को गणपति स्वामी मेले में विचरण कर रहे थे । चारों ओर जन-समुद्र था । सहसा एक स्थान पर रोने-चीखने की आवाज सुनकर वे ठहर गये । पास जाने पर उन्होंने देखा—एक व्यक्ति के शव को लोग रस्सी से बांध रहे हैं । गणपति स्वामी ने पूछा—"इस आदमी को तुम लोग क्यों बांध रहे हो ?"

एक व्यक्ति ने जवाब दिया—"स्वामीजी, गर्मी की वजह से चक्कर खाकर गिर पड़ा और कुछ देर पहले इसकी मृत्यु हो गयी । अब दाह-क्रिया के लिए इसे बांधा जा रहा है ।"

गणपति ने कहा—"आप लोगों को मतिभ्रम हो गया है । यह तो जीवित है । कहीं जीवित व्यक्ति को श्मशान ले जाते हैं ?"

स्वामीजी की बात सुनकर रोनेवाले चुप हो गये । शव को बांधने वाले हाथ रुक गये । तभी अपने कमण्डलु से पानी निकाल कर गणपति ने शव पर छिड़का और वह व्यक्ति जीवित हो गया । इस चमत्कार को देखकर लोग स्वामीजी के पीछे पड़ गये । किसी सूरत से वहाँ के लोगों से बचाव करते हुए स्वामीजी आगे बढ़ गये ।

मार्ग में आप ने कहाँ-कहाँ चमत्कार दिखाया, इसका विवरण प्राप्य नहीं है । सहसा आप गुजरात के पोरबन्दर स्थित सुदामापुरी में एक व्यक्ति द्वारा पहचान लिए गये । यह व्यक्ति रामेश्वर दर्शन करने गया था । गणपति द्वारा मृत व्यक्ति को जीवन दान देते स्वयं अपनी आँखों से देखा था । श्रद्धा से गदगद होकर उसने स्वामीजी के

पैर पकड़ लिए और कहा—"स्वामीजी महाराज, आप तो भगवान् हैं । रामेश्वर में मैंने आपके चमत्कार को देखा है । जब आप मुर्दे को जिला सकते हैं तब आप क्या नहीं कर सकते । अब मैं आपको कहीं जाने नहीं दूंगा । आपकी सेवा करूंगा ।"

गणपति ने मन ही मन सोचा—अजीब मुसीबत में फंस गया । उन्होंने कहा—"पर मैं योगी हूँ । आज यहाँ, कल वहाँ । बेकार परेशान होओगे ।"

लेकिन वह व्यक्ति किसी तरह राजी नहीं हुआ । लाचारी में स्वामीजी को उनके यहाँ आतिथ्य ग्रहण करना पड़ा । उक्त ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी स्वामीजी की सेवा में लगे रहे । गणपति को समझते देर नहीं लगी कि यह सेवा निस्स्वार्थ नहीं है । फल की आकांक्षा से कर रहे हैं । एक दिन भोजन के पश्चात् गणपति स्वामी ने कहा—"पण्डितजी, मैं आपकी सेवाओं से संतुष्ट हो गया । इस सेवा के बदले तुम मुझसे क्या चाहते हो, इसे स्पष्ट रूप से बताओ ? शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं ।"

पण्डित ने अवसर समझकर कहा—"घर की हालत आप देख ही रहे हैं । हम अपनी इच्छा अनुसार आपकी सेवा नहीं कर पा रहे हैं । अपनी दशा सुधारने के लिए व्रत रखा, तीर्थ यात्रा की, पर कोई लाभ नहीं हुआ । अब आपका आशीर्वाद मिल जाय तो शायद हमारी स्थिति सुधर जाय ।"

गणपति स्वामी ने कहा—"अब तक तुमने जो कुछ किया, वह सब मन से नहीं किया । उदाहरण के लिए अपने को लो । ब्राह्मण हो, पर त्रिसंध्या नहीं करते । पूजा करने बैठते हो तो मन कहीं दौड़ता है । ऐसी दशा में तीर्थ या व्रत रखने का फल कैसे मिलेगा ? तुम्हारे शरीर में ही सारे तीर्थ हैं । इसके लिए अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं । गंगा नासापुट में, यमुना मुख में, वैकुण्ठ हृदय में, वाराणसी ललाट में, हरिद्वार नाभि में है । जिस पुरी में प्रवेश करते समय कोई संकोच और कुण्ठा बोध न हो, वही वैकुण्ठ है । पाप तो आशंका की जड़ है । जो पापी होता है, वह प्रत्येक कार्य में संकुचित होता है, निष्पाप को कहीं शंका नहीं होती । वह सर्वदा कुण्ठा शून्य होता है । वही वैकुण्ठपुरी जाने का अधिकारी होता है । वैकुण्ठ कहाँ है ? हृदय के नीचे इड़ा और पिंगला की नाड़ी या चन्द्र और सूर्य अर्थात् जहाँ गंगा-यमुना का संगम है । इस संगम में स्नान कर लेने पर जीव के सभी पाप ध्वंस हो जाते हैं । गंगा-यमुना का यह संगम हृदय के नीचे है । इड़ा आत्मज्ञान और पिंगला विवेक है । जिस प्रकार गंगा-यमुना का आपस में सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार इड़ा-पिंगला का है । पिंगला अर्थात् विवेक से इड़ा अर्थात् आत्मज्ञान की उत्पत्ति होती है । मन को इसी पिंगला के मार्ग से प्रवेश कराकर क्रमशः निवृत्ति के द्वारा इड़ा में मिलाना चाहिए । बाद में जहाँ इड़ा और पिंगला का संयोग हुआ है अर्थात् जिस स्थान पर आत्मज्ञान और विवेक एकत्र हुए हैं, वहाँ मन को ले जाकर स्नान कराने पर अर्थात् मन को आत्मज्ञान सलिल में निमज्जित करने पर महाफल प्राप्त होता है ।"

पण्डित ने कहा—"आपने जो बताया, इसकी सामान्य जानकारी मुझे है, परन्तु मेरा मन इतना चंचल है कि मैं इन बातों को सहज रूप में ग्रहण नहीं कर पाता । मन को स्थिर कैसे किया जा सकता है ?"

गणपति स्वामी ने हंसकर कहा—"मन की वृत्तियाँ समुद्र की लहरों की तरह चंचल है । कहा गया है कि मन का तेज अग्नि से अधिक है । इसका अतिक्रम करना, पर्वत लांघने से कठिन है । मन को वश में करने का अर्थ है सुमेरु पर्वत को उखाड़ फेंकना । मन कोई सामान्य इन्द्रिय नहीं है, इसलिए गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—"इन्द्रियाणां मनश्चास्मि" अर्थात् इन्द्रियों में मन हूँ । मन को अगर वश में कर लिया जाय तो समस्त सुख-दुःख पर विजय प्राप्त किया जा सकता है । मन की क्रियाएँ नट की तरह होती हैं । क्षण में आनन्द तो क्षण में विषाद अनुभव करता है । मन पर अधिकार कर लेने पर ब्रह्म हुआ जा सकता है । लेकिन जबतक समर्पण की भावना मन में उत्पन्न नहीं होगी तबतक मन चंचल रहेगा ।"

पण्डित ने विनय पूर्वक कहा—"हम ठहरे गृहस्थ । हमारे मन में अर्थ चिन्ता, सन्तान चिन्ता, रोग-शोक की चिन्ता, परिवार की चिन्ता जड़ जमाये हुए हैं । ईश्वर की आराधना भी मन लगाकर कर नहीं पाते । ऐसी स्थिति में आप जैसे सन्त ही इन चिन्ताओं से हमें मुक्ति दिला सकते हैं ।"

अब गणपति स्वामी अट्टहास कर उठे । उन्होंने कहा—"वत्स, मैं यह जान चुका था कि तुम मेरी सेवा निःस्वार्थ भाव से नहीं कर रहे हो । बदले में मुझसे कुछ पाने की लालसा रखते हो । उसे पाने के बाद तुम्हारी चंचलता दूर हो सकती है । तुम हो अपुत्रक । अर्थ की चिन्ता है ही । इन दोनों की पूर्ति हो जायगी । अब तुम एकाग्र मन से गायत्री पाठ, त्रिसंध्या करते रहो । इसका फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा ।"

गणपति स्वामी के आशीर्वाद से उक्त ब्राह्मण को पुत्र-लाभ हुआ था और राज्य की ओर से निष्कर भूमि प्राप्त हुई थी । यहाँ एक अर्से तक रहने के बाद गणपति स्वामी हिमालय की ओर बढ़ गये । यह सन् १७०१ की बात है । हिमालय के क्षेत्र में प्रवेश करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ते गये । फिर अपनी पसन्द की जगह देखकर समाधि पर बैठ गये । यह स्थान नेपाल राज्य के अधीन था । चारों ओर घना जंगल था । आस-पास मानव-बस्तियाँ नहीं थीं । केवल वृक्षों पर अपरिचित पक्षियों का कलरव सुनाई दे रहा था । नीचे कुछ दूरी पर स्रोतवती निर्झरिणी बह रही थी । वे कभी गुफा के बाहर और कभी भीतर जाकर रहते थे ।

कहा जाता है कि नेपाल नरेश को शिकार का शौक था । जिन दिनों गणपति स्वामी यहाँ थे, उन्हीं दिनों नरेश कुछ सैनिकों के साथ शिकार के लिए निकल पड़े । साथ में प्रधान सेनापति भी था । घने जंगल में आने पर एक बाघ दिखाई दिया । सेनापति ने गोली मारी, पर बाघ घायल होकर आगे भाग गया । उसकी तलाश में सेनापति कुछ सैनिकों के साथ आगे बढ़ गये । बाघ का पीछा करते हुए वे स्वामीजी की गुफा के पास आये तो देखा—घायल बाघ उनके पैरों के समीप लेटा हुआ है । स्वामीजी उसके बदन पर हाथ फेर रहे हैं ।

इस अकल्पनीय दृश्य को देखकर सेनापति चकित रह गया । घायल बाघ पागल हो जाता है और यहाँ वह स्वामीजी के पास भीगी बिल्ली की तरह सो रहा है । गणपति स्वामी ने कहा—"पास चले आइये । डरने की कोई बात नहीं । अब इसमें हिंसावृत्ति नहीं है ।"

सभी भय से शंकित स्वामीजी के पास आये और उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये । स्वामीजी ने हंसकर कहा—"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । हिंसा से ही प्रतिहिंसा जन्म लेती है । मैं हिंसक नहीं हूँ, यह समझकर यह जंगली जानवर मेरी शरण में आया है । इस वक्त तुम लोगों के मन में हिंसा के बदले भी शंका-भय है, इसलिए यह वन्य पशु शान्त है । अगर अभी तुम्हारे मन में हिंसा की भावना उत्पन्न हो जाय तो यह बाघ तुम लोगों पर हमला कर सकता है । हत्या पाप है । किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे की हत्या करे । आप लोगों को डरने की जरूरत नहीं है । सभी लोग निर्विघ्न रूप से वापस जा सकते हैं । सम्भव हो तो आज से हिंसा का त्याग कर दो । जब तुम किसी को जीवन-दान नहीं दे सकते तब उसकी हत्या करने का अधिकार भी नहीं है ।"

इस तरह देर तक प्रबोध वाक्य सुनने के पश्चात् सेनाध्यक्ष महोदय राजधानी वापस आ गये । इस चमत्कारपूर्ण घटना का विवरण उन्होंने महाराजा को सुनाया ।

सारी घटना सुनने के बाद नेपाल-नरेश को स्वामीजी के प्रति कौतूहल हुआ । उनके दर्शन के लिए वे व्याकुल हो उठे । एक ऐसा सन्त उनके राज्य में है और उन्हें इसकी जानकारी नहीं ? दूसरे दिन अनेक उपहार लेकर वे स्वामीजी के निकट आये । गणपति स्वामी को प्रणाम करने के बाद सारा उपहार उनके सामने रख दिया गया ।

स्वामीजी ने आशीर्वाद देने के बाद कहा— "राजन्, सन्तों को ऐश्वर्य की आवश्यकता नहीं होती । आपने व्यर्थ ही कष्ट किया । मुझे इन सब सामग्रियों की जरूरत नहीं है ।"

नेपाल नरेश ने विनय के साथ कहा—"स्वामीजी, मैं इस बात से परिचित हूँ, किन्तु सन्तों के निकट खाली हाथ आने पर असम्मान होता है । मन्दिर में देवता का दर्शन करने के लिए जाते समय अंजली की सामग्री ले जाना पड़ता है । मैंने इसी परम्परा का पालन किया है । मेरे लिए सौभाग्य का विषय है कि आप जैसे सन्त मेरे राज्य में पधारे हैं । अगर आपको आपत्ति न हो तो राजमहल आपका स्वागत करने को तैयार है ।"

तभी स्वामीजी ने अभय मुद्रा में हाथ उठाकर कहा—"राजन्, आपका कथन पूर्णतः सत्य है, आपने लौकिकता का पालन किया है । यह सब सामग्रियाँ सांसारिक जीवों के लिए है । अर्थ और ऐश्वर्य ही अनर्थ के मूल हैं । अगर मुझे इन सबकी कामना होती तो मैं वैराग्य क्यों ग्रहण करता ? आप यह सब उन अभावग्रस्त लोगों को दे दें जिन्हें इसकी जरूरत है । रहने को गुफा है । पीने के लिए झरने का जल है । वृक्षों के फलों से आहार मिल ही जाता है ।"

नेपाल नरेश को समझते देर नहीं लगी कि स्वामीजी जंगल से लोकालय में जाना नहीं चाहते । इस ओर से निराश होकर उन्होंने कहा—"स्वामीजी, कहने को मैं राजा हूँ, पर बड़ा अशान्त रहता हूँ । मन को शान्ति नहीं मिलती । यदि आप आदेश दें तो यदा-कदा आपकी सेवा में आकर आपसे कुछ ज्ञान प्राप्त करूँ ।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"अवश्य आ सकते हो, राजन् ! आपने राजमहल जाने के लिए राजहठ नहीं दिखाया, इसलिए प्रसन्न हूँ । किन्तु एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी । अब भविष्य में जीव-हत्या नहीं करोगे ।"

नरेश ने कहा—"आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।"

गणपति स्वामी का आकर्षण पुनः तीसरे दिन नरेश को उनके यहाँ खींच लाया । नरेश के बैठते ही गणपति स्वामी ने कहा—"राजन्, बहुत चंचल दिखाई दे रहे हैं । मन की चंचलता दूर करने के लिए प्रातः और सायं आधा घण्टा स्थिर होकर निश्चिन्त भाव से बैठना पड़ेगा । कुछ दिनों तक यह अभ्यास करते रहोगे तो मन में स्थिरता उत्पन्न होगी । इसके बाद धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाना । मन के स्थिर हो जाने पर एक प्रकार का आनन्द अनुभव करोगे ।"

नेपाल नरेश ने पूछा—"महाराज आप तो सिद्ध महात्मा हैं । कृपया एक शंका समाधान कर दें । ईश्वर निराकार है या साकार ? अगर ईश्वर है तो उनका दर्शन हमारे जैसे लोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?"

गणपति स्वामी कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—"ईश्वर प्रत्येक प्राणी की आत्मा में है । वे साकार भी हैं और निराकार भी । तुम्हारे देह में जो चित् स्वरूप आत्मा है, वही ईश्वर है । निराकार, निर्मल तथा जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से वर्जित । वे चिन्मय, आनन्दमय, अशरीरी, पूर्ण, ज्योतिर्मय, नित्य एवं शुद्ध ज्ञानमय हैं । इसी आत्मा का चिन्तन करना चाहिए । जो लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, वे मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं । अगर ईश्वर एक क्षण के लिए शरीर से अलग हो जायँ तो मृत्यु अनिवार्य है । ईश्वर है, यदि मन में यह विश्वास हो तो उनकी खोज करना चाहिए और अगर विश्वास नहीं है तो व्यर्थ में तर्क करने से कोई लाभ नहीं । केवल अपने मत का प्रतिपादन करना होगा । जिन्हें विश्वास है, वे उनकी खोज कर रहे हैं । ईश्वर को खोजने के पहले 'मैं कौन हूँ', इसे जान लेना चाहिए ।"

नेपाल नरेश ने चकित होकर कहा—"मेरी साधारण बुद्धि में यही समझ में आता है कि आप सन्त हैं, मैं नरेश हूँ, साथ आये लोग मेरे सहचर और प्रजा हैं ।"

गणपति स्वामी ने कहा—"तुमने मेरे उत्तर को समझा नहीं । मैं कौन हूँ ? पंचभूत, पंच प्राण, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि से निर्मित हूँ । ये सभी भी भिन्न-भिन्न हैं । नाड़ी चतुष्टय यथा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना और चित्रा हैं, छः रिपु तथा चित्त, वासना, चिन्ता, तृष्णा, माया और आशा इन सभी उपादानों से शरीर का गठन हुआ है । इनके अलावा ज्ञान, चैतन्य, आत्मा और परमात्मा हैं । इन सभी के बारे में अच्छी तरह से जान लेने पर मैं कौन हूँ तथा मानव-देह में सर्वदा वे विराजमान हैं या नहीं, इसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है । यदि हम अपने को जान लेते हैं तो ईश्वर को पहचान लेंगे । यदि ईश्वर हैं यह विश्वास हो तो वे बिल्कुल पास हैं, समझ लेना चाहिए । यदि यह विश्वास नहीं है तो वे बहुत दूर हैं, उनसे मुलाकात होगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता ।"

नेपाल नरेश ने कहा—"महाराज ! ईश्वर हैं, इस पर तो दृढ़ विश्वास है । सूर्य, चन्द्र का आगमन, हवा, भूकम्प, नदियों में बाढ़ आना, पेड़-पौधे आदि सब कुछ

उसी सत्ता की देन हैं, पर उन्हें हम अपने निकट नहीं पाते जिस प्रकार आपको पा रहे हैं । हम किस ढंग से उनकी पूजा या उपासना करें ताकि उनका दर्शन सुलभ हो ?''

गणपति स्वामी ने कहा—''ईश्वर को हम देख जरूर नहीं पाते, परन्तु उनके कार्य और शक्ति देखकर उनकी दया का परिचय प्राप्त करते हैं जैसा कि आपने अभी कहा साकार या देवी-देवता के बिना जो उपासना है, वह केवल पत्रहीन वृक्ष की भांति अंगहीन उपासना है । हमारे यहाँ चार प्रकार की उपासना पद्धति है । प्रथम ईश्वर की उपासना, द्वितीय देव-देवी की उपासना, तृतीय शक्तिशाली पदार्थ की उपासना जैसे सूर्य, अग्नि इत्यादि और चौथा धार्मिक-मानव की उपासना । गाय की उपासना, वृक्षों की उपासना, शस्यों की उपासना भी एक अलग किस्म की उपासना है । इसी उपासना के माध्यम से लोहार हथौड़ी-निहाई आदि की पूजा करता है, कुम्हार चाक की पूजा करता है, मिस्त्री अपने औजारों की पूजा करता है, ब्राह्मण अपनी पुस्तकों की पूजा करता है । उपासना के वक्त अचेतन उपास्य को सचेतन समझते हुए करना चाहिए । आदिम मनुष्य ऐसा ही करते थे । अचेतन को अचेतन समझकर उपासना करने पर वह जड़ उपासना हो जाती है ।''

नेपाल नरेश के निरन्तर आगमन के कारण गणपति स्वामी का प्रचार हो गया । फलस्वरूप राजधानी ही नहीं, आस-पास के गाँवों से काफी तायदाद में लोग आने लगे । नेपाल के नागरिक पशुपतिनाथ के उपासक होने के कारण धार्मिक प्रवृत्ति के हैं । गणपति स्वामी इस कोलाहल पूर्ण वातावरण से परेशान हो उठे । एक दिन चुपचाप उत्तर की ओर बढ़ गये । विन्दुसर झील को पार कर वे एक ऐसी घाटी में आये जिसके तीन ओर रुपहले बरफ से ढकी पहाड़ियाँ थीं । एक बेनाम नदी पूर्ण वेग के साथ बह रही थी । घाटी के नीचे बड़े-बड़े वृक्ष सैनिकों की तरह दण्डायमान थे । पहाड़ की तलहटी के इधर अनेक गोल-गोल पत्थर बिछे हुए थे ।

सहसा उस सुनसान घाटी में एक अपरिचित आवाज सुनायी दी—''गणपति स्वामी, इधर पधारिये ।''

गणपति स्वामी चौंककर चारों ओर देखने लगे । इस सुनसान अपरिचित स्थान पर कौन नाम लेकर पुकार रहा है । चारों ओर देखने के बाद उन्होंने देखा कि पहाड़ की तलहटी के समीप एक व्यक्ति खड़ा हाथ के इशारे से उन्हें बुला रहा है । कौतूहल लिए गणपति स्वामी उस व्यक्ति की ओर बढ़ गये । दूर से देखने पर उन्हें एक जटाधारी संन्यासी प्रतीत हुए । वे एक गुफा के द्वार पर खड़े थे । दूर से गुफा दिखाई नहीं दे रही थी ।

गणपति के पास आने पर संन्यासी ने कहा—''आज आपका आगमन यहाँ होगा, इसकी जानकारी हमें थी । मैं यहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहा था । नेपाल से आपको आकर्षित करके यहाँ ले आया गया है । यहाँ आपको कुछ दिनों तक साधना के लिए रहना पड़ेगा । इसके बाद मानसरोवर जाना पड़ेगा । आइये, मेरे पीछे-पीछे चले आइये ।''

मंत्रमुग्ध की भांति गणपति स्वामी उक्त संन्यासी का अनुसरण करते हुए गुफा के भीतर चलने लगे । कुछ दूर तक अंधेरा था और फिर सहसा चांदनी जैसा प्रकाश दिखाई देने लगा । गणपति स्वामी के लिए यह सब अद्‌भुत सा प्रतीत हो रहा था। ऊपर पहाड़ की छ्त से छनकर प्रकाश सम्पूर्ण गुफा को आलोकमय बना रहा था । कुछ दूर आगे बढ़ते ही संन्यासीजी रुक गये ।

गणपति स्वामी ने देखा—दायीं ओर पत्थर की कई मूर्तियाँ बैठी हैं । सभी के सिर पर वृहद जटाएं हैं । संन्यासी ने कहा—"आपके लिए यह सौभाग्य का विषय है कि आप अपनी साधना-शक्ति के माध्यम से यहाँ तक आने में समर्थ हुए हैं । यह आपके गुरु की असाधारण कृपा है । अलक्ष्य रूप से वे आपकी सहायता करते आ रहे हैं । अब आपको यहाँ कुछ दिनों तक इन महात्माओं के सान्निध्य में रहना पड़ेगा ।"

गणपति स्वामी ने चकित दृष्टि से उन मूर्तियों की ओर देखा जिन्हें अब तक वे प्रस्तर की प्रतिमा समझते रहे । कुल चार महात्मा थे । वे जीवित हैं, इसके एक भी लक्षण दिखाई नहीं दिये ।

संन्यासी ने कहा—"मैं शीघ्र ही मानसरोवर जाऊँगा । जबतक मैं वहाँ से वापस न आऊँ तबतक आपको इन्हीं पूज्यनीय योगियों की सेवा में रहना पड़ेगा ।"

गणपति ने पूछा—"मुझे यहाँ क्या करना पड़ेगा ?"

संन्यासी ने कहा—"इन पूज्यनीय योगियों की पूजा और आहार के लिए फल संग्रह करके देना पड़ेगा । शेष समय आप इधर की बुर्जी पर साधना करेंगे । एक बात और बता दूँ कि जिस दिन इन तपस्वियों से आपको आशीर्वाद प्राप्त होगा, उसी दिन यह समझ लीजिएगा कि आपकी यहाँ की साधना पूर्ण हो गयी । इसके बाद ही आप मानसरोवर दर्शन करने के लिए स्वतंत्र होंगे । शायद तब तक मैं यहाँ वापस आ जाऊँ ।"

गणपति ने पूछा—"ये महात्मा यहाँ कितने दिनों से हैं ? क्या ये यहीं रहते हैं ?"

संन्यासी ने कहा—"यह मैं नहीं जानता । शायद सहस्रों वर्षों से यहाँ हैं । इनका शरीर कारण से महाकारण तक पहुँच गया है । इनसे आशीर्वाद पाना दूर की बात, इनका दर्शन पाना भा कठिन होता है । तपस्या और ऐशी शक्ति के फलस्वरूप हम इनका दर्शन कर पाते हैं ।"

गणपति ने कहा—"स्वामीजी, आप यहाँ कब से हैं ?"

संन्यासी ने कहा—"दो शताब्दी के ऊपर हो गया । इन तपस्वियों के शारीरिक-प्रकाश से मुझे जो अलौकिक ज्ञान प्राप्त होता है, वह अन्यत्र नहीं मिलता ।"

गणपति ने आगे बढ़कर प्रत्येक संतों को प्रणिपात किया । चेहरे पर केवल विद्युत की भांति जलती हुई दोनों आँखें सजीव लगती रहीं । शेष सारा शरीर मूर्तिवत रहा । कई दिनों बाद संन्यासी महाशय मानसरोवर चले गये ।

गणपति स्वामी नित्य स्नान के पश्चात् नीचे से जंगली फलों का संग्रह करते और पहाड़ की तलहटी से पहाड़ी फूलों को लाकर गुफा में विराजमान तपस्वियों के आगे

रख देते । कुछ देर बाद पत्तल हटाते समय देखते कि फल-फूल गायब हैं । नैवेद्य समर्पित करते समय प्रत्येक योगी के सामने गणपति खड़े होकर प्रणाम करते थे । उस वक्त योगियों की ज्वलन्त पुतलियों के अलावा अन्य कुछ दिखाई नहीं देता था । पलकें यथा भाव स्थिर रहती थीं । शरीर में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं होता था ।

धीरे-धीरे नौ वर्ष गुजर गये । यहाँ गणपति स्वामी सन् १६६१ ई० में आये थे और अब १७०० ई० का प्रारंभिक काल था । एक दिन नैवेद्य परिवेशन कर ज्योंही गणपति स्वामी ने नित्य की तरह प्रणाम किया त्योंही गुफा की मन्द रोशनी विद्युत की भांति तीव्र हो गयी । उस प्रकाश में गणपति ने देखा—सभी योगियों का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में स्थिर हो गया है । इस अद्भुत दृश्य को देखते ही उनकी आँखें अपने आप बन्द हो गयीं । पता नहीं, कितनी देर बाद जब पुनः आँखें खुलीं तब उन्होंने देखा कि सभी योगी पूर्ववत गोद में दोनों हाथ रखे साधना में रत हैं । प्रकाश पहले जैसा हो गया है । सभी योगियों के सामने जमीन से सिर लगाकर प्रणाम करने के पश्चात् गणपति स्वामी गुफा के बाहर चले आये । इस समय वे अपने आप में स्वर्गीय अनुभूति प्राप्त कर रहे थे ।

इस घटना के दूसरे दिन संन्यासी महाशय मानसरोवर की यात्रा से लौट आये । गणपति स्वामी को देखते ही संन्यासी ने पूछा—"लगता है, आपको आशीर्वाद प्राप्त हो गया है । अब आप मानसरोवर की यात्रा कर सकते हैं ।"

गणपति ने पूछा—"स्वामीजी, एक जिज्ञासा है, अन्यथा न लें । आप यहाँ कबतक रहेंगे ?"

संन्यासी ने कहा—"यह बताना कठिन है । शायद मुझे हमेशा के लिए रहना पड़े । जबतक मुझे आज्ञा नहीं प्राप्त होगी तबतक रहना पड़ेगा । अभी यहाँ न जाने कितने संत आयेंगे । अब तुम शेष क्रिया के लिए मानसरोवर चले जाओ । अब यहाँ पुनः आने की चेष्टा मत करना ।"

'क्यों ?'

"यह इसलिए कि यह अलौकिक स्थान है । यहाँ वही लोग आ पाते हैं जिन्हें ये तपस्वी चाहते हैं । जिन्हें मार्ग-दर्शन देने की आज्ञा प्राप्त होती है । तुमने यहाँ जो कुछ देखा या ज्ञान प्राप्त किया, वह पूर्वजन्म के संस्कार तथा साधना के बल पर प्राप्त किया है ।"

गणपति स्वामी इन बातों को सुनकर विस्मित हुए । बोले—"क्या हिमालय में यही एक स्थान है या और भी हैं ?"

संन्यासी ने कहा—"सम्पूर्ण हिमालय में अनेक सिद्ध भूमियाँ हैं । उनकी जानकारी केवल सिद्ध लोग ही जानते हैं । भगवान् आशुतोष की कृपा अगर हुई तो मार्ग में दो-चार सिद्धभूमि का दर्शन तुम्हें हो जायगा, पर उनकी जानकारी शायद ही हो । यह ठीक है कि उन पवित्र भूमियों से गुजरते समय तुम्हें उनका मौन आशीर्वाद प्राप्त हो ।"

मानसरोवर रवाना होने के पूर्व गणपति स्वामी गुफा में आकर मूर्तिवत योगियों को साष्टांग प्रणाम करने के बाद बाहर निकल आये । कई सप्ताह यात्रा करने के बाद वे मानसरोवर पहुँच गये । यहाँ अनेक सन्तों के दर्शन हुए । कहा जाता है कि बंगाल के प्रसिद्ध सन्त लोकनाथ ब्रह्मचारी और हितलाल मिश्र से भी उनकी यहीं मुलाकात हुई थी ।

मानसरोवर की साधना पूर्ण कर आप हिमालय से नीचे उतर रहे थे, ठीक उसी समय एक अद्‌भुत घटना हुई । पड़ोस के गांव में एक विधवा की एकमात्र संतान की मृत्यु हो गयी थी । गाँव के लोग दाह-क्रिया करने के लिए शव को लेकर श्मशान जा रहे थे । पीछे-पीछे शोकार्त माँ उच्चस्वर में विलाप करती हुई आ रही थी ।

गणपति महाराज के चरण रुक गये । शोकार्त करनेवाली माँ ने स्वामीजी की ओर देखा और उसका रोना बन्द हो गया । बालक के शव को वह गणपति स्वामी के चरणों के निकट रखती हुई बोली—"अपने पति को कई वर्ष पहले खो चुकी हूँ, केवल इसी पुत्र को लेकर मैं जी रही थी । इसे जीवनदान दें महाराज ! मानसरोवर से आनेवाले सन्तों की अनेक दया देख चुकी हूँ । आज आपको मुझ पर कृपा करनी होगी ।"

पहाड़ के लोग धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं । सन्तों पर उनका अगाध विश्वास रहता है । मानसरोवर और कैलास जानेवाले सन्तों की सेवा करना वे अपना धर्म समझते हैं ।

गणपति स्वामी शव के पास बैठकर उस पर हाथ फेरने लगे । मन ही मन गुरुदेव और इष्ट को उन्होंने स्मरण किया । कुछ ही देर में बालक जीवित हो गया । यह दृश्य देखकर सभी हर्ष से विभोर हो गये । उपस्थित सभी लोगों में चरण स्पर्श करने की होड़ लग गयी । इसके बाद बड़े आदर के साथ गणपति स्वामी को लोग अपने गाँव ले आये ।

अभाव, दरिद्रता से संघर्ष करनेवालों से तंग आकर एक दिन गणपति स्वामी यहाँ से अन्तर्धान हो गये । इसके बाद वे सन् १७२६ ई० में नर्मदा नदी के किनारे मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में दिखाई दिये । मानसरोवर में कितने दिनों तक आप साधना करते रहे और उस गांव से गायब होने के बाद बीच की अवधि में कहाँ रहे, इसकी जानकारी किसी को नहीं है ।

मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में अनेक साधु-महात्मा रहते थे । इन लोगों के बीच आकर गणपति आनन्द पूर्वक रहने लगे । यहाँ रहनेवाले सन्तों ने इन्हें सम्मान के साथ ठहराया । खाली समय में धार्मिक चर्चा होती और बाद में लोग अपनी-अपनी चर्चा में लगे रहते । यहां के अधिकांश संन्यासी गणपति स्वामी को अपनी कोटि का समझते रहे । लेकिन एक दिन की घटना का जिक्र जब खाकी बाबा ने सन्त-मण्डली में किया तब लोगों ने मान लिया कि आप सामान्य सन्त नहीं, बल्कि उच्चस्तर के योगी हैं ।

खाकी बाबा इस आश्रम के सबसे पुराने वाशिन्दे हैं । उनके बाद आये सभी सन्त उनका आदर करते हैं । एक दिन की घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—"तुम लोगों को यह मालूम ही है कि मैं रात्रि के अन्तिम पहर में नदी के किनारे स्नान करने के बाद साधना करता हूँ । कल जब मैं नदी किनारे पहुँचा तो देखा—दूध की नदी बह रही है । मैंने सोचा—शायद आँखों का भ्रम है । पास जाने पर देखा कि वास्तव में नर्मदा का जल दूध बन गया है । वहीं हमारे गणपति स्वामी अंजली में भर-भर कर दुग्धपान कर रहे हैं । इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर मैंने सोचा कि तुम लोगों को बुलाकर दिखाऊँ, पर उसके पहले स्वयं दुग्धपान की इच्छा हुई । नदी में हाथ डालते ही सारा दूध पानी बन गया । तुरत गणपति स्वामी की ओर दृष्टि गयी तो देखा—वे नदी तट से ऊपर जा रहे थे । समझते देर नहीं लगी कि तांत्रिक-प्रक्रिया के माध्यम से उन्होंने यह चमत्कार किया था । उच्चस्तर के योगी इस तरह की विभूति का प्रदर्शन करते हैं ।"

कई सन्तों ने गणपति स्वामी से इस चमत्कार के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट की, पर वे हंसकर टाल गये । इस घटना के बाद से अधिकांश नवयुवक उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे । एक दिन एक संत ने प्रश्न किया—"स्वामीजी हमें यह ज्ञात हो गया है कि आप तांत्रिक-साधना करते हैं । तांत्रिक मत से षटचक्र का भेद कैसे होता है, क्या इस पर प्रकाश डालेंगे ?"

गणपति स्वामी ने कहा—"चाहे कोई भी साधना हो, प्रत्येक साधना में षट्‌चक्र-भेद करना ही पड़ता है तभी साधक को अपनी साधना में सफलता मिलती है । इड़ा और पिंगला नाड़ी के मध्य में सत्व, रजः तमः गुण विशिष्ट चन्द्र, सूर्याग्नि रूपा धतूरे के फूल की तरह शुभ्र, सुषुम्ना नाड़ी है । यह नाड़ी मूलाधार कमल से मस्तक के ब्रह्मरंध्र तक चली गयी है । इस सुषुम्ना नाड़ी से जुड़े गुह्य, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य एवं मस्तक में सात पद्म हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञाक्ष एवं सहस्रार । इसी सुषम्ना में मणि की भांति प्रभा विशिष्ट दैदिप्यमान वज्रा नाड़ी है । उसके अभ्यन्तर में चन्द्र, सूर्य अग्निस्वरूप ब्रह्मा विष्णु, शिव युक्त मकड़ी के जाला की तरह चित्रा नाड़ी भी है । जबतक निर्मल ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा तबतक इस नाड़ी की जानकारी नहीं होगी । इसके अलावा इस चित्रा नाड़ी के भीतर ब्रह्म नाड़ी है जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा बिजली की तरह उज्ज्वल है जिसके भीतर के छिद्र से ब्रह्मरंध्र स्थित सहस्रार पद्म से जो सुधा क्षरित होती है, योगिगण उसे मूलाधार के कमल स्थित कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा पान करते हुए सिद्ध होते हैं ।"

तभी खाकी बाबा ने कहा—"स्वामीजी आपने जितने सूक्ष्म ढंग से समझाया, इसे नवीन सन्त नहीं समझ पाये होंगे । आप कृपा करके विस्तार से समझा दें । इससे इन्हें पर्याप्त ज्ञान होगा ।"

गणपति स्वामी मुस्कराये और इसके बाद कहने लगे—"मूलाधार चक्र गुह्य में है । चतुर्दल, रक्तवर्ण, स्वर्णाभ, अधोमुख पद्म है । साधक को ध्यान के समय ऊर्ध्वमुख होकर चिन्तन करना चाहिए । इसके चार दलों में वं, शं, षं सं—यही चार वर्ण है । कर्णिका में चतुष्कोण पृथ्वी चक्र है । यह चक्र उद्दीप्त, पीतवर्ण, अष्ट शूलयुक्त होते हैं । इनके भीतर लं अर्थात् पृथिवी-बीज हैं, साथ ही लक्ष्मी-बीज भी । इस चक्र

के देवता इन्द्र हैं जिनकी गोद में बैठे ब्रह्मा भौतिक पदार्थों की सृष्टि कर रहे हैं और चतुर्वेदों का पाठ भी कर रहे हैं । इसी चक्र में रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, द्वादश सूर्यतुल्य, डाकिनी शक्ति है । बज्रा नाड़ी के मुखपर कामरूप नामक पीठ है, उसमें त्रिकोण यंत्र है । उक्त यंत्रोद्भुत कन्दर्प वायु ने जीवात्मा को आयत्त कर रखा है । इसी त्रिकोणा यंत्र में लिंग रूपी स्वयंभू हैं । उक्त लिंग के पात्र में सार्ध्द त्रिपाक वेष्टन करती हुई, ब्रह्म नाड़ी के मुँह के समीप मुँह सटाकर कुण्डली-शक्ति निद्रित हैं । यही विद्युत रूपिणी महामाया हैं, यही भ्रमर की तरह गुन-गुनाती हैं, यही शब्दों की जननी हैं, यही श्वास-प्रश्वास के द्वारा प्राणियों की जीवन-रक्षा करती हैं । इसी कुण्डलिनी के देह में परमाकला त्रिअंश रूपा प्रकृति अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रही हैं ।

"लिंग की जड़ में स्वाधिष्ठान है । षड़दल अरुणावर्ण कमल है । इसके षड़दलों में षड़ वर्ण वं, भं, मं, यं, रं, लं, है । उनमें श्वेत पद्माकार वरुण देवता का चक्र है । इस चक्र में शरच्चन्द्रद्युति, मस्तक पर अद्र्धचन्द्रधारी, मकरारोही, 'वं' बीज रूप वरुणा देवता हैं । इस देवता की गोद में चौबीस लक्षणों से युक्त नारायण हैं इस चक्र की शक्ति लक्ष्मीरूपा राकिनी हैं ।

"मणिपुर चक्र नाभि के मूल में है । यहाँ दस दल नील वर्ण के कमल हैं । दस दलों में डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, प, फं—दस अक्षरयुक्त वर्ण है । इनके बीच में 'रं' कारात्मक त्रिकोणा बह्णि बीज है । इसे स्वस्तिमण्डल ने घेर रखा है । उक्त वह्णि देवता चतुर्वाहु, आरक्त सूर्यसम एवं मेष वाहन युक्त हैं । इनकी गोद में इष्ट दाता और संहारकारी महाकाल हैं । इस चक्र की शक्ति लाकिनी हैं । इनका वर्ण श्याम है ।

"अनाहत चक्र हृदय में है । सिन्दूरीवर्ण जिसमें द्वादश दल कमल हैं । द्वादश दलों में कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं,—वर्णायुक्त पद्म हैं । इसमें षट्कोण धूम्रवर्ण वायुमण्डल है । इसमें 'यं' कारात्मक वायु-बीज देवता है जो कृष्णासार मृगारूढ़ा हैं । इस बीज के भीतर हंस की भांति शुक्लवर्ण अभय वरदाता ईशान महादेव हैं । इस चक्र की शक्ति काकिनी हैं । पीतवर्णा, आनन्दमयी । इन कमलों की कर्णिका में अति कोमल त्रिकोण शक्ति हैं । इसी शक्ति के भीतर सुवर्ण वर्ण वाणालिंग महादेव हैं । इसी कमल में एक और दूसरा अष्टदल कमल है । उसमें एक कल्पतरु है । उसके नीचे मणिपीठ में हंसरूपी जीवात्मा है । साधक यहीं गुरु निर्देशित इष्ट देवता का ध्यान करेगा । इससे वह आत्म-दर्शन कर सकेगा ।

"विशुद्ध चक्र कण्ठदेश में है । धूमाभ, षोड़शदल वर्ण अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ली, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः पोड़श स्वरयुक्त कमल है । कर्णिका के भीतर सुधाकर्षण उज्ज्वल शरीरधारी, शुक्लाम्बर परिधृत, गोलाकार आकाश चक्रधारी हैं । इस चक्र के भीतर हंसाकार, पाशाकुंशधारी, द्विभुज तथा अभीतिवरप्रद आकाश-बीज है । उसकी गोद में पंचमुख त्रिनेत्र, दसबाहु हर गौरी हैं । उक्त कर्णिका के भीतर चन्द्रमण्डल का सुधा पान करनेवाली, पीतवर्णा चतुर्भुजा साकिनी शक्ति हैं ।

"आज्ञाचक्र भ्रूमध्य में है । ध्यान का निकेतन शुक्ल वर्ण द्विदल ह, क्ष है । इस स्थान पर इड़ा-पिंगला वरणा-असी रूप में मिलकर वाराणसी तीर्थ बन गयी है ।

षट्चक्र का चित्र
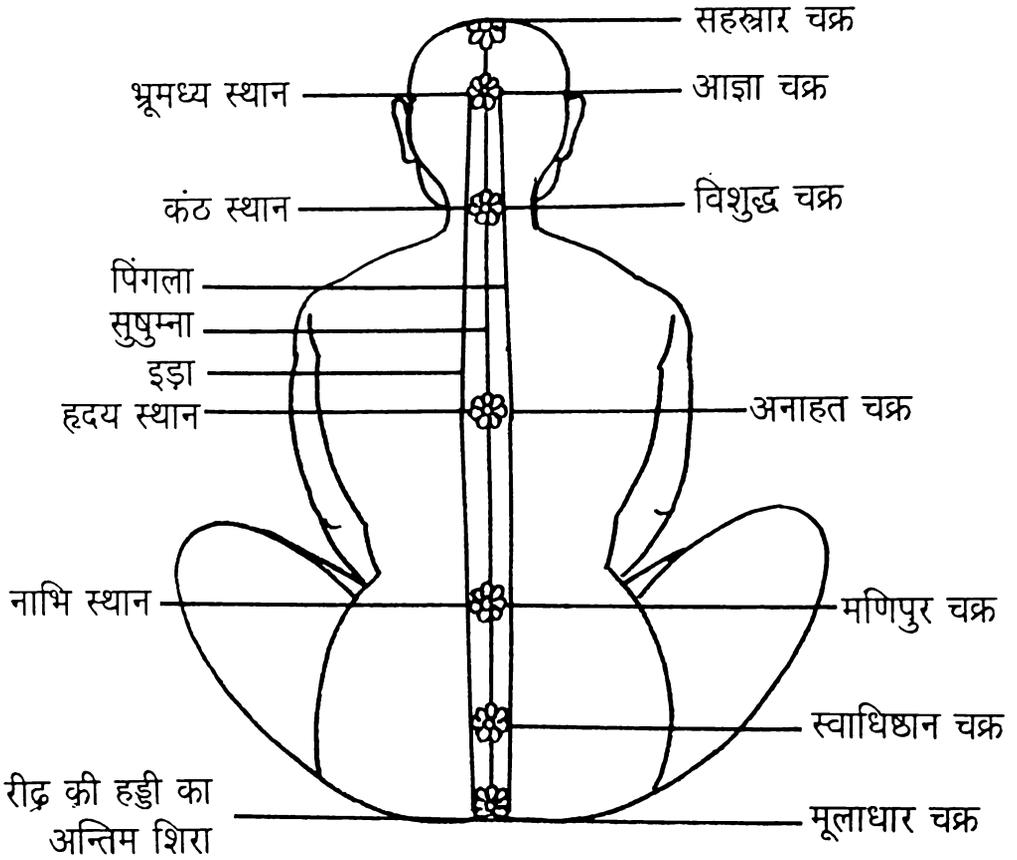
इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के साथ सात चक्रों का चित्र

इस कमल में शुक्लावर्णा षड्मुखी हाकिनी शक्ति है । इनके चारों भुजाओं में पुस्तक, कपाल, डमरू एवं जप माला है । इस पद्म ध्यान में ब्रह्मज्ञान होता है । इस पद्म में मन एवं कर्णिका में त्रिकोण यंत्र है । यह परम लय का स्थान है जहाँ शुक्ल नामक महाकाल एवं इतयाक्ष सिद्धलिंग विराजमान है । इस शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है । आज्ञाचक्र मे ज्ञान-प्राप्त कर लेने पर जीव अद्वैतवादी हो जाता है ।

"आज्ञाचक्र के कुछ ऊपर शुद्ध ज्ञान, ज्ञेय, प्रदीप शिखा की तरह ज्योतिर्मय, ओंकारात्मक अन्तरात्मा निरन्तर निवास करते हैं । उसके ऊपर अर्द्धचन्द्र, उसके ऊपर विन्दुरूपी नाद है, वहाँ सकारात्मक खरगोश की तरह उज्वल शिवलिंग है । उस ओंकार के ऊर्ध्व में आकाश और नीचे पृथ्वी है, उसमें निरलम्ब भगवान् हैं । इस ओंकार के

ऊपरी हिस्से में द्विभुज महानाद नामक शिवकार वायु का लय स्थान भी है । उक्त आज्ञाचक्र के ऊर्ध्व में शंखिनी नामक नाड़ी के आगे आकाश में विसर्ग रूप में युगल विन्दु है ।

उसके अधः भाग में पूर्णेन्दु की भांति शुभ्रवर्ण, तरुणतपन रश्मि सदृश्य सहस्रदल कमल अधोमुखी हैं । उनमें यथास्थान पर पंचाशत मातृकावर्ण है । इस स्थान पर शशः और चन्द्र विराजमान हैं । इस चन्द्र के अभ्यन्तर में त्रिकोण यंत्र हैं, इस यंत्र में गुह्यतम चिन्द्रपाकार एक शून्य स्थान है, वहाँ परमात्मा का स्वरूप शिव विराजमान हैं । वे योगानन्द ज्ञान मंगलदाता है, इन्हें परमहंस भी कहा जाता है । यहीं पर शैवों का कैलास है, वैष्णवों का गोलकधाम है और शाक्तों की महाशक्ति का निज वास-स्थान है ।"

इस लम्बीं व्याख्या को सुनकर उपस्थित सन्त स्तंभित रह गये । खाकी बाबा ने कहा—"हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि इस आश्रम में पधारकर गणपति स्वामी ने इसे पवित्र किया है । यद्यपि हम तांत्रिक-पद्धति के अनुयायी नहीं हैं, यह भी साधना का एक विशिष्ट अंग है, पर इतना विशद ज्ञान हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं । पूज्यवर, आप अपने ज्ञान से हमें पल्लवित करते रहें ।"

गणपति ने कहा—"योग की शिक्षा की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न अवश्य हैं, पर लक्ष्य एक ही है । मेरा निजी विचार है कि योग-शिक्षा के लिए न जंगलों में रहने की जरूरत है और न अनाहार रहने की । चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है । चित्त के वशीभूत इन्द्रियों के इष्ट साधन में लगाने की जिनमें क्षमता है, उनके लिए जंगल और लोकालय बराबर हैं । एकाग्रता ही योग का मूल प्राण है । इस एकाग्रता के निबन्धन में जीवात्मा और परमात्मा एकीभूत होगा यानी जीवात्मा-परमात्मा में किसी प्रकार का भेद नहीं रहेगा, तब वह वास्तविक योगी होगा । यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि तन्मयत्व योग का प्रधान अंग है । तन्मयत्व भाव के उदय होने पर किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती, योग सिद्धि का प्रधान गुण तन्मयत्व है । इस भाव की उपलब्धि होने पर काम्य वस्तु की दृष्टि रहती है, दूसरी ओर दृष्टि नहीं जाती और न उसकी चिन्ता होती है । हृदय में केवल काम्य वस्तु की उपलब्धि होती है ।"

एक वयोवृद्ध सन्त ने कहा—"तांत्रिक मत के अनुसार आपने योग के बारे में उपदेश दिया । योग के माध्यम से भी तो षट्चक्र भेद किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में हम लम्बे मार्ग पर क्यों जायँ ।"

गणपति स्वामी ने कहा—"स्वामीजी, मैंने पहले ही निवेदन किया था कि साधना की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न अवश्य हैं, पर उनका उद्देश्य एक ही है—परमात्मा से साक्षात्कार । योग-साधना साधारण बात नहीं है । जबतक तन्मयता नहीं होगी तबतक योग का सुफल प्राप्त नहीं होगा । तन्मयता भी कैसी ? ईश्वर और अपने में जब कोई भेद दिखाई न दे, वैसी तन्मयता । योग में षट्चक्र भेद मुख्य है । अगर षट्चक्र भेद कर लिया जाय तो स्वर्गराज्य पर अधिकार प्राप्त करने में समर्थ हुआ जा सकता है । जो लोग षट्चक्र भेद कर लेते हैं, उनके लिए निर्वाण-मुक्ति सहज है ।"

बुजुर्ग संन्यासी ने कहा—"हमारे खाकी बाबा अक्सर कहा करते हैं कि साधना से अगर आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाय तो किसी के लिए योग सहज है । आप तन्मयता पर जोर दे रहे हैं ।"

गणपति स्वामी ने हंसकर कहा—"खाकी बाबा का कथन ठीक है, पर यह आत्मज्ञान भी तन्मयता से प्राप्त होगा । जिस व्यक्ति में आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, उसके लिए योग सहज है । आत्मज्ञान ही योग की उपलब्धि है । उसी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए योग सीखना पड़ता है । इसके लिए न जंगल में रहने की जरूरत है और न गृहत्याग की । कुछ ऐसे नियम हैं जिनका चिन्तन और उसके अनुरूप कार्य करने पर योगफल यानी आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए कठिन साधना की आवश्यकता नहीं होती । केवल अनुध्यान करने पर योगफल प्राप्त हो जाता है । इसे सरल योग कहते हैं । योग-फल प्राप्त करने के लिए जिन वृत्तियों का निरोध करना आवश्यक है जबतक वैसा नहीं किया जायेगा तबतक योग-फल प्राप्त नहीं होगा ।"

गणपति स्वामी जबतक मार्कण्डेय आश्रम में थे तबतक नित्य किसी न किसी विषय पर चर्चा होती रही । स्वामीजी को योग दर्शन, अध्यात्म के बारे में बराबर प्रवचन देना पड़ता था । इससे उन्हें परेशानी होने लगी । एक दिन वे चुपचाप चल दिये । सन् १७३३ में आप प्रयाग के एक निर्जन स्थान में आकर योगाभ्यास में रत हो गये ।

× × ×

एक दिन स्वामीजी नदी किनारे चुपचाप बैठे थे । कुछ लोग स्नान कर रहे थे और कुछ स्नान के बाद घर की ओर जा रहे थे । अचानक तेज हवा चलने लगी । बालू उड़ने लगा । नदी में लहरें नृत्य करने लगीं । देखते ही देखते मूसलाधार पानी बरसने लगा । जो लोग नदी किनारे थे, वे अपना-अपना सामान लेकर सुरक्षित स्थान की ओर भागने लगे ।

रामतरण भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति जो कि स्वामीजी से परिचित था, उनके पास आकर बोला—"स्वामीजी पानी में क्यों भींग रहे हैं । चलिये, सामने की दुकान में बैठें ।"

गणपति स्वामी रेत पर पद्मासन लगाये बैठे थे । उन्होंने कहा—"मेरे लिए चिन्तित होने की जरूरत नहीं है । मुझे कोई कष्ट नहीं हो रहा है । तुम जा सकते हो ।"

रामतरण ने पुनः कहा—"पानी रुक जाने पर आ जाइयेगा । यहाँ भींगने से बीमार हो सकते हैं ।"

स्वामीजी ने कहा—"मैं यहाँ एक आवश्यक कार्य के लिए बैठा हूँ । अभी जाना सम्भव नहीं है ।"

इस भयंकर आंधी-पानी में कौन-सा आवश्यक कार्य है, यह रामतरण समझ नहीं सका । तभी स्वामीजी ने नदी की ओर इशारा करते हुए कहा—"उधर देखो, एक नाव

आ रही है जिस पर कुछ यात्री बैठे हैं । वह डूबनेवाली है । उन्हें अकाल-मृत्यु से बचाना है ।"

रामतरण ने देखा—बहुत दूर यात्रियों से लदी एक नाव लहरों के थपेड़े से बुरी तरह डगमगा रही है । लेकिन वह समझ नहीं सका कि नाव के डूबने पर स्वामीजी यहाँ बैठे-बैठे कैसे बचायेंगे । कौतूहलवश वह देखने के लिए रुक गया और वर्षा में भींगता रहा । अचानक उसने देखा कि नाव सचमुच डूब गयी । इधर स्वामीजी अपनी जगह से गायब दिखाई दिये । कुछ ही क्षणों में उसने जो दृश्य देखा, उसे देखकर उसे अपार विस्मय हुआ । यात्री से लदी वह नाव पानी के ऊपर आ गयी है । नाव के एक छोर पर स्वामीजी बैठे दिखाई पड़ रहे थे ।

धीरे-धीरे नाव घाट पर आकर लग गयी । सभी यात्री स्वामीजी को प्रणाम करने के बाद चले गये । रामतरण ने स्वामीजी के पैर पकड़ते हुए कहा—"महाराज यह चमत्कार आपने कैसे किया । आपको कैसे मालूम हुआ कि नाव डूबनेवाली है और आप अपने आसन से अचानक गायब होकर नावपर दिखाई दिये । यह सब कैसे हुआ ?"

गणपति स्वामी ने कहा—"यह कार्य कोई भी कर सकता है । इसके लिए केवल दृढ़ इच्छा-शक्ति चाहिए जो केवल भगवद्-कृपा से प्राप्त होती है । मैंने कुछ भी नहीं किया । मेरे मन में उन्हें बचाने की भावना उत्पन्न हुई, ईश्वर ने मेरे माध्यम से स्वयं किया, इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

रामतरण की साधारण बुद्धि में यह बात नहीं आयी । उसने कल्पना की कि स्वामीजी अवश्य कोई अलौकिक पुरुष हैं । इस घटना के बाद से रामतरण बाबा की सेवा में लगा रहता था ।

इलाहाबाद में स्वामीजी चार वर्ष तक थे । रामतरण तथा कुछ अन्य भक्तों के अलावा स्वामीजी के बारे में अन्य किसी को कोई विशेष जानकारी नहीं हुई ।

सन् १७३७ ई० में जब अवध का पतन होने लगा और इलाहाबाद में गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ तब स्वामीजी काशी चले आये । यहाँ नगर के दक्षिणी भाग स्थित एक सुनसान स्थान में आकर रहने लगे । उन दिनों जंगमबाड़ी के आगे सम्पूर्ण क्षेत्र जंगली इलाका था जो भद्रवन (भदैनी) के नाम से प्रसिद्ध था । अस्सी के समीप जहाँ तुलसीदास जी रहते थे, उन दिनों उसका नाम तुलसीदास का बाग था । यहाँ रहते समय स्वामीजी टहलते हुए कभी-कभी लोलार्क कुण्ड तक चले आते थे । स्वामीजी की भाषा और रंग-रूप देखकर लोग कहते तैलंगाना से एक बाबाजी यहाँ आये हुए हैं ।

स्वामीजी का वास्तविक नाम स्थानीय जनता नहीं जानती थी । तैलंगाना स्वामी के स्थान पर आपका नाम 'तैलंग बाबा, तैलंग स्वामी' हो गया । यहाँ के लोगों के इस संबोधन से सम्पूर्ण भारत में यही नाम प्रचारित हुआ ।

एक दिन तैलंग स्वामी लोलार्क कुण्ड के समीप आये तो देखा—कुष्ठ रोग से पीड़ित एक आदमी दर्द से कराह रहा है । दयार्द्र होकर स्वामीजी ने पूछा—"यहाँ रास्ते में क्यों पड़े हो ? तुम्हें घर पर रहना चाहिए ।"

रोगी ने कहा—"यहाँ मेरा घर नहीं है । मेरा घर अजमेर में है । इस रोग के कारण मुझे मेरे परिवार वालों ने घर से निकाल दिया है । सभी मुझसे नफरत करने लगे तब मैं बाबा के दरबार में चला आया । यहाँ मरने से मुक्ति मिल जायगी । पता नहीं, किस जन्म का पाप भोग रहा हूँ ।"

स्वामीजी ने पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

'ब्रह्मा सिंह ।'

"जाओ, कुण्ड में स्नान कर आओ । मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा । घबराने की कोई बात नहीं है । सब ठीक हो जायगा ।"

ब्रह्मा सिंह अति कष्ट से स्नान करके लौटा तब स्वामी जी ने उन्हें कुछ बेलपत्र देते हुए कहा—"इसे चबाकर खा जाओ । अब नित्य कुण्ड में स्नान करने के बाद मेरे पास चले आना । मैं पास ही में रहता हूँ । जल्द ही यह रोग दूर हो जायगा ।"

ब्रह्मा सिंह की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं । वह लगातार महीनों तक यह क्रिया करता रहा । उसने महसूस किया कि उसका रोग क्रमशः ठीक हो रहा है । एक दिन श्रद्धा से गद्‌गद्‌ होकर उसने बाबा से निवेदन किया—"आपने मुझे जीवनदान दिया है । आज से यह शरीर आपका है । कृपया मुझे सेवक के रूप में स्वीकार कर लें । मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा ।"

कुछ दिनों बाद स्वामीजी तुलसी बाग से हटकर वेदव्यास में आकर रहने लगे । एक दिन ब्रह्मा सिंह के साथ स्नान करने के लिए गंगा किनारे आये तो देखा—एक जगह भीड़ लगी हुई है । पास जाने पर मालूम हुआ कि एक बंगाली युवक जो कि एक अर्से से तपेदिक से परेशान था, शायद आज उसका काल आ गया है । खून की कै कर रहा है ।

तैलंग स्वामी ने कहा—"आप लोग जरा हट जाइये । मैं जरा उसे देखना चाहता हूँ ।" स्थानीय लोग बाबा से अच्छी तरह से परिचित थे । दो-चार लोगों को विश्वास हो गया कि शायद बाबा की कृपा पाकर यह स्वस्थ हो जाय या आराम मिले ।

तैलंग स्वामी ने पूछा—"कहाँ रहते हो ?"

तभी भीड़ में से किसी ने कहा—"केदार घाट के पीछे एक बंगाली के मकान में रहता है । नाम है सीतानाथ वंद्योपाध्याय ।"

स्वामीजी उसके पास बैठकर छाती सहलाने लगे । थोड़ी सी राहत महसूस होने के बाद वह उठकर बैठ गया ।

स्वामीजी ने कहा—"अभी बैठे रहो । तुम्हारा कष्ट दूर हो जायगा ।"

इतना कहने के पश्चात्‌ तैलंग स्वामी नदी किनारे से थोड़ी सी मिट्टी लाकर बोले—"लो थोड़ा-सा खा लो । बाकी मिट्टी का प्रलेप छाती पर लगा लो । नित्य स्नान करने के बाद यहीं गंगा की मिट्टी का प्रलेप लगाते रहना आराम हो जायगा ।"

कुछ दिनों बाद सीतानाथ पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया । कृतज्ञता प्रकट करने के लिए स्वामीजी के पास आकर उसने कहा—"स्वामीजी, अगर आप कृपा न करते तो

मैं मर ही जाता । बड़ी कृपा होगी, अगर आप मुझे मंत्र देकर शिष्य बना लें । मैंने अभी तक दीक्षा नहीं ली है ।"

स्वामीजी ने कहा—"मैं किसी को दीक्षा नहीं देता । मेरा कोई शिष्य भी नहीं है । ब्रह्म सिंह मेरे साथ रहता है, इससे पूछ लो । यह केवल मेरी सेवा करता है ।"

इस उत्तर को सुनकर सीतानाथ चुप हो गया, फिर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ ।

× × ×

हरिश्चन्द्र घाट स्थित श्मशान काशी का प्राचीन श्मशान है । चौक स्थित महाश्मशान के आसपास बस्तियाँ बस जाने के कारण मणिकर्णिका घाट पर प्राचीन श्मशान आ गया था । यही वजह है कि बाहर से आने वाले अधिकांश शव हरिश्चन्द्र घाट पर आने लगे ।

एक दिन ब्रह्म सिंह को साथ लेकर तैलंग स्वामी श्मशान की ओर आये । कुछ देर बाद अनेक लोग एक शव को लेकर किनारे उतरने लगे । शवयात्रियों के पीछे एक महिला जोर-जोर से रोती हुई आ रही थी । ज्यों ही शव को भूमि पर लोगों ने रखा त्योंही उक्त महिला उससे लिपट गयी । बड़ी मुश्किल से उस महिला को शव से अलग किया जा सका ।

स्वामीजी ने ब्रह्म सिंह को शव यात्रियों के पास घटना की जानकारी के लिए भेजा तो पता लगा कि मृत व्यक्ति की पत्नी शव के साथ सती होना चाहती है । निस्सन्तान ब्राह्मणी है । दूसरी जाति की होती तो पुनर्विवाह कर लेती ।

सारी बातें सुन लेने के बाद स्वामीजी उक्त महिला के पास आये । उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"शान्त हो जा बेटी ।"

स्नेह भरे इस शब्द को सुनते ही महिला ने एक बार स्वामीजी की ओर देखा और फिर उनके चरणों पर अपना मस्तक रखती हुई बोली—"मैं अब जीना नहीं चाहती । बाबा जी, इन लोगों को समझाइये । अब मैं किसके लिए जीऊँ ?"

स्वामीजी ने कहा—"मेरा पैर तो छोड़ तुझे तो अभी जीवित रहना है । पति की सेवा करनी है ।"

'पति की सेवा करनी है ?' यह बात सुनते ही महिला ने चीखकर पूछा—"क्या ?"

उपस्थित लोग विस्मय से बाबा को देखने लगे । तभी तैलंग स्वामी ने शव के नाभिस्थल में पैर का अंगूठा लगा दिया । क्षण भर बाद लाश कुनमुनाने लगी । स्वामीजी ने कहा—"इसके बंधन खोल दो ।"

लोग शव के बंधन खोलने लगे । शेष लोग चकित दृष्टि से शव को जीवित होते देखने में लगे रहे । स्वामीजी चुपचाप अन्तर्धान हो गये । महिला, जीवित ब्राह्मण तथा साथ आये लोगों में कोई अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं कर सका ।

× × ×

कुछ दिनों बाद तैलंग स्वामी मदैनी से हटकर हनुमान घाट के पास आकर रहने लगे । इस घाट के समीप दक्षिण भारतीयों की बस्ती बस गयी थी । शाम के समय स्थानीय लोग बाबा के पास आते और उनका उपदेश सुनते थे । सामान्य लोगों को ईश्वर की महिमा का उपदेश देते हुए कहते थे—"ईश्वर की महिमा अपरम्पार है । उनकी आरती करने के लिए चन्द्र-सूर्य के दीप जल रहे हैं, पवन चंवर कर रहा है, तरु-लता पुष्पराशि लेकर उन्हें सुगंध दे रहे हैं, सभी विहंग कीर्तन सुना रहे हैं, वज्र शंख निनाद करते हैं, भक्ति, श्रद्धा, शान्ति, करुणा, मुक्ति जिनकी पद सेवा करते हैं, वैराग्य, ज्ञान, योग, धर्म जिनके द्वार के प्रहरी हैं जो जीव के कर्मानुसार फल का विधान कर रहे हैं । लोग उन्हें भले ही भूल जायँ, पर वे किसी का त्याग नहीं करते । जो माया, निद्रा, भंगकर जाग्रत करने के लिए सभी का आह्वान कर रहे हैं । स्वयं निर्गुण होते हुए भी त्रिगुणों से त्रिजगत् को बांधे हुए हैं । उनकी आराधना करना हम सबका धर्म है ।"

काशी में विभिन्न सम्प्रदाय के साधु-सन्त प्राचीनकाल से रहते आये हैं । नगर के लोग अपनी रुचि के अनुसार ऐसे संतों के यहाँ जाकर प्रवचन सुनते हैं, उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध करते हैं । उनकी अभ्यर्थना करते हैं । तैलंग स्वामी के निकट भी उनकी योग विभूति से प्रभावित होकर लोग आते थे । ऐसे ही लोगों में श्यामदास नामक एक युवक काशी आया । बचपन से ही इन्हें योग सींखने की लालसा थी । देश के कोने-कोने में स्थित तीर्थ स्थानों में गया । वहाँ के अनेक साधु सन्तों से मिला, परन्तु उसे कहीं सफलता नहीं मिली । काशी आने पर तैलंग स्वामी की चर्चा सुनकर उनके पास आने-जाने लगा । स्वामीजी अपने प्रवचनों में आध्यात्म की बातें बड़े सरल ढंग से समझाते थे ।

श्यामदास घर छोड़कर योग सीखने के उद्देश्य से यहाँ आया है, इस बात की जानकारी जब तैलंग स्वामी को हो गयी तब वे एक दिन उसे समझाते हुए कहने लगे—"यह ठीक है कि आत्मज्ञान के लिए योग सीखना पड़ता है । इसके लिए गृहत्याग या अरण्यवास की आवश्यकता नहीं होती । इसके कुछ नियम हैं जिनका चिन्तन और तदनुरूप आचरण करने से योग-फल तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की कठिन साधना नहीं करनी पड़ती, केवल उसका अनुध्यान करने पर योगफल प्राप्त किया जा सकता है । इसे सरल योग कहते हैं । योग-फल प्राप्त करने के लिए जिन सब वृत्तियों का निरोध करना आवश्यक होता है, उनको किये बिना योग-फल की प्राप्ति नहीं हो सकती । उन नियमों और प्रकारों को इस नियमावली में स्थान दिया गया है । इस प्रकार आचरण करने और हृदय में इस प्रकार के भावों को ग्रहण करने पर निश्चय ही योग-फल की प्राप्ति हो सकती है ।"

इतना कहने के बाद सहसा तैलंग स्वामी चुप हो गये । सामान्य श्रोताओं ने कोई प्रश्न नहीं किया, परन्तु श्यामदास जिज्ञासु प्रवृत्ति का होने के कारण पूछ बैठा—"कृपया उन नियमों को बताने का कष्ट करें ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"पहला, असंतुष्ट मनुष्य किसी को भी संतुष्ट नहीं कर सकता । जो सर्वदा संतुष्ट रहता है, वह सबको प्रफुल्ल कर सकता है ।

दूसरा—जिह्वा पाप की बातें कहने में बहुत ही तत्पर रहती है, उसे संयत करना आवश्यक है ।

तीसरा—आलस्य सब अनर्थों का मूल है । प्रयत्न करके इसका त्याग करना चाहिए ।

चौथा—संसार धर्माधर्म की परीक्षा की भूमि है, सावधान होकर धर्माधर्म की परीक्षा करके कार्य का अवलम्बन करें ।

पांचवां—किसी भी धर्म के प्रति अश्रद्धा न रखें, सभी धर्म का सार है, उनमें अवश्य ही सत्य निहित है ।

छठां—दरिद्र को दान दो । धनी को देना व्यर्थ है, क्योंकि उसे आवश्यकता नहीं, इसीलिए वह आनन्दित नहीं होता ।

सातवां—साधु का सहवास ही स्वर्ग तथा असत्संग ही नरकवास का मूल है ।

आठवां—आत्मज्ञान, सत्पात्र में दान और संतोष का आश्रय करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

नौवां—जो शास्त्र को पढ़कर तथा उसके अभिप्राय को जानकर उसका अनुष्ठान नहीं करते, वे पापी से अधम हैं ।

दसवां—किसी भी कार्य के अनुष्ठानों के मूल में धर्म होना चाहिए, नहीं तो सिद्ध नहीं होगी ।

ग्यारहवां—कभी किसी की भी हिंसा न करो । सत् या असत् उद्देश्य से कभी किसी प्राणी का वध न करो ।

बारहवां—जो आदमी पाप-कलंक को बिना धोये, मिताचारी और सत्यानुरागी बिना हुए गेरुआ वस्त्र धारण कर ब्रह्मचारी बनता है, वह धर्म का कलंक स्वरूप है ।

तेरहवां—बिना छप्पर के घर में जैसे वर्षा का पानी गिरता है, चिन्तन रहित मन में भी उसी प्रकार शत्रु प्रवेश करते हैं ।

चौदहवां—पापी लोग इहकाल में अनुतापाग्नि से दग्ध होते हैं, वे जब-जब अपने कुकर्मों को याद करते हैं तब-तब उनके प्राणों में अनुताप जाग उठता है ।

पन्द्रहवां—(क) मननशीलता अमरत्व की प्राप्ति का मार्ग है, मनन-शून्यता मृत्यु का मार्ग है ।

(ख) गर्व न करो, कामोपभोग का चिन्तन न करो ।

सोलहवां—शत्रु शत्रु का जितना अनिष्ट नहीं कर सकता, कुपथगामी मन मनुष्य का उससे भी अधिक अनिष्ट करता है ।

सतरहवां—मधु मक्षिका जिस प्रकार पुष्प के सौन्दर्य अथवा सुगन्ध का अपचय न करके मधु संग्रह करती है, तुम भी उसी प्रकार पाप में लिप्त न होकर ज्ञान प्राप्त करो ।

अट्ठारहवां—यह पुत्र मेरा है, यह ऐश्वर्य मेरा है, अति अज्ञानी लोग भी इस प्रकार चिन्तन करके क्लेश पाते हैं । वह स्वयं अपने लिए नहीं है तब पुत्र और सम्पत्ति किस प्रकार अपने हो सकते हैं ।

उन्नीसवां—कम ही लोग भवसागर पार होते हैं, अधिकांश लोग तो धर्म का ढोंग रचकर किनारे पर ही दौड़-धूप करते हैं ।

बीसवां—संग्राम में जिसने लाखों मनुष्यों को जीत लिया है, वह मनुष्य वास्तविक विजयी नहीं है । जिसने अपने आपको जीत लिया है, वही वास्तविक विजयी है ।

इक्कीसवां—पाप मुझ पर आक्रमण नहीं कर सकता—यह सोचकर निश्चिन्त मत रहो । एक-एक बूंद से जल का घड़ा भर जाता है, वैसे ही निर्बोध मनुष्य क्रमशः पापमय हो जाते हैं ।

बाइसवां—किसी को कठोर वचन मत बोलो । कठोर वचन कहने से कठोर बात सुननी पड़ेगी । चोट करने पर चोट सहनी पड़ेगी । रुलाने से रोना पड़ेगा ।

तेइसवां—जो लोग वासना को नहीं जीत सकते, उनका मन नंगे बदन, जटा-धारण, भस्म लेपन, उपवास, मृत्तिका शय्या इत्यादि से पवित्र नहीं हो सकता ।

चौबीसवां—दूसरों को जैसा उपदेश देते हो, स्वयं भी वैसा बन जाओ । जिसने अपने को वशीभूत कर लिया है, वह दूसरे को भी वश में कर सकता । अपने को वश में करना कठिन है ।

पच्चीसवां—पाप और पुण्य सब निज कृत होते हैं । कोई आदमी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता ।

छब्बीसवां—यह जगत् जल बुद-बुद, मृग मरीचिका के समान है जो इस जगत् को तुच्छ जानता है, मृत्यु उसे नहीं देख पाती ।

सत्ताइसवां—दौड़ती हुई गाड़ी के समान उत्तेजित क्रोध को जो संयत कर सकता है, वही यथार्थ सारथि है । दूसरे लोग केवल रास पकड़े हुए हैं ।

अट्ठाइसवां—प्रेम के बल से क्रोध को जीतो, मंगल के द्वारा अमंगल को जीतो तथा सत्य के द्वारा मिथ्या को जीतो ।

उन्तीसवां—गुरु जो उपदेश दें, उसे मन लगाकर सुनो और पालन करो ।

तीसवां—व्यर्थ मत बोला करो, जो अधिक बोलता है, वह निश्चय ही अधिक झूठ बोलता है । जहाँ तक हो, बातें कम करने की चेष्टा करो । उसके साथ ही शान्ति प्राप्त होगी ।

× × ×

इसी मुहल्ले में एक महिला अपने बीमार पति को लेकर रहती थी । नित्य गंगा-स्नान करने के बाद वह विश्वनाथ मन्दिर में दर्शन करने जाती थी । वहाँ अपने पति के स्वास्थ्य की कामना करती थी । लौटते समय दवा लेकर वापस लौटती थी ।

एक दिन तैलंग स्वामी पूर्ण रूप से उलंग बैठे थे । यह दृश्य देखकर वह महिला क्रोध से जल गयी । कुछ दूर जाकर राह चलते लोगों से स्वामीजी की ओर इशारा करती हुई उन्हें भला-बुरा कहने लगी ।

स्वामीजी चुपचाप आँखें बन्द किये समाधिस्थ रहे । जो लोग स्वामीजी को जानते थे, वे उस महिला को समझाने लगे । लेकिन उस महिला का क्रोध शान्त होने के बदले और उग्र हो गया ।

इसी रात को उक्त महिला ने स्वप्न में देखा कि स्वयं विश्वनाथ भगवान् आँखें लाल किये उसे फटकार रहे हैं—"आज तूने मेरे एक साधक का अपमान किया है, अब तेरी कामना पूरी नहीं होगी । तेरा पति कष्ट से मुक्ति नहीं पायेगा । अगर तू अपना भला चाहती है तो उस स्वामी के पास जा और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांग । वही तेरा कल्याण करेगा ।"

बाबा विश्वनाथ की बातें सुनकर महिला भय से चीख उठी । उसकी आँखें खुल गयी । धीरे-धीरे सारी बातें याद आने लगी । उसने अनुमान लगाया कि कल सबेरे जिस संन्यासी को फटकारा था, क्या शंकर भगवान् उन्हीं के बारे में कह गये ? जरूर उसी साधक के सम्बन्ध में कहा गया है । उस दिन स्नान करने के बाद वह शंकित भाव से आकर स्वामीजी से क्षमा मांगने लगी । बोली—"पति के बीमार रहने के कारण आजकल मेरा मिजाज ठीक नहीं रहता । क्रोध के कारण कल मैंने आपका अपमान किया । मैं आपको पहचान नहीं सकी । रात को बाबा विश्वनाथ स्वप्न में आकर डांटते रहे । आप जबतक क्षमा नहीं करेंगे तबतक मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी ।"

स्वामीजी मुस्कराये । सारी स्थिति समझ गये । बोले—"अरी माँ, तू क्यों घबड़ाती है । तू तो मेरी माँ है । माँ क्या अपने बेटे को उसकी गलती पर नहीं डांटती ? अगर तू न बिगड़ती तो मैं कपड़े न पहनता । आने-जाने वाले जब डांटते तब तू नाराज होकर मुझे मारने आती । मैं तो कल की बात भूल ही गया था । बाबा के दरबार में पिताजी को निरोग बनाने की कामना लेकर जाती है न । पूर्व जन्म का कुछ भोग बाकी था, इसलिए कष्ट पा रहा था । यह भभूत ले जा । इसमें से थोड़ी सी उसे खिला देना और बाकी पेट में पोत देना । वह ठीक हो जायगा । कल आकर फिर भभूत ले जाना । भूलना नहीं ।"

स्वामीजी की बातों से महिला का सारा दुःख दूर हो गया । भभूत का असर प्रथम दिन से होने लगा । यह चमत्कार देखकर महिला स्वामीजी के प्रति अभिभूत हो गयी । नित्य आकर उनके चरणों में फूल रखकर श्रद्धा ज्ञापित करने लगी । फलस्वरूप अन्य पीड़ित लोग भी आने लगे । स्वामीजी सभी को भभूत देते और कहते—"तुम्हारे कष्ट में कमी तो जरूर होगी, पर तुम्हें अपने पापों का दण्ड भोगना होगा । उसमें मैं हस्तक्षेप नहीं कर सकता । इसके लिए तुम्हें ईश्वर के निकट क्षमा मांगते हुए उनकी आराधना करनी होगी ।"

कुछ दिनों बाद स्वामीजी यहाँ से हटकर दशाश्वमेध घाट पर आकर रहने लगे । नगर का मुख्य घाट होने के कारण यहाँ लोगों का आवागमन अधिक होता था ।

यहाँ रहने के कारण तैलंग स्वामी की प्रसिद्धि बढ़ती गयी । अनेक लोगों का कष्ट तैलंग स्वामी की कृपा से दूर होता गया ।

रामापुरा मुहल्ले में पण्डित शिवप्रसाद मिश्र रहते थे वे नित्य स्नान करने के लिए दशाश्वमेध घाट आते थे । तैलंग स्वामी के निकट लोगों की भीड़ देखकर उनके मन में आशा का संचार हुआ । उनका एक मात्र पुत्र काफी दिनों से लकवा रोग से पीड़ित था । एक दिन उसे गोद में लेकर तैलंग स्वामी के पास आये ।

तैलंग स्वामी के चरणों के पास उसे रखते हुए उन्होंने बताया कि इस लड़के का इलाज काफी जगह कराया । झाड़-फूंक, टोटका, जिसने जो कहा, सब किया, पर जरा-सा लाभ नहीं हुआ । यह स्वयं कष्ट पा रहा है और हम सबको कष्ट दे रहा है । इसका कष्ट अब हम लोगों से देखा नहीं जा रहा है । स्वामीजी, इसे ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि यह ठीक हो जाय या इसे मुक्ति मिल जाय । इतना कहते-कहते मिश्रजी फफककर रो पड़े ।

करुणामय तैलंग स्वामी ने बालक को नीचे से ऊपर तक कई बार देखा । इसके बाद उसके सिर पर हाथ फेरने के बाद बोले—"इस बालक को अब तुम घर ले जाओ । इसका भोगदण्ड समाप्त हो गया है । कुछ दिन और प्रतीक्षा करो । भगवान् इस बालक पर अवश्य कृपा करेंगे ।"

आशा की क्षीण-रेखा पाकर मिश्रजी आनन्द से विभोर हो उठे । तैलंग स्वामी के चरणों की धूल बच्चे के तथा अपने सिर से लगाने के पश्चात् घर चले आये । इस घटना के एक सप्ताह बाद बालक पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया । लेकिन यह घटना तैलंग स्वामी के लिए मुसीबत बन गयी । अनेक पीड़ित लोग आपके पास आने लगे ।

इस मुसीबत से बचने के लिए उन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया । इसके बावजूद पीड़ित अभावग्रस्त लोग आते रहे । आनेवाले लोगों में एक व्यक्ति स्वभाव का क्रूर था । जब उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई तब उसने तैलंग स्वामी को तड़पाकर मारने की युक्ति निकाली ।

एक हड़िया में चूने का घोल बनाकर लाया और कहा—"स्वामीजी, आपके लिए भैंस का गाढ़ा दूध लाया हूँ । कृपया इसे ग्रहण कीजिए ।" यह व्यक्ति जब कभी स्वामीजी के पास आता तब देखता कि आगन्तुक लोग स्वामीजी को काफी भोजन देते हैं । स्वामीजी प्राप्त सभी भोजन को अनायास खा जाते हैं । एक बार एक सेठ ने लगभग आधा मन खाद्य पदार्थ खिलाया था । दूसरी ओर स्वामीजी बिना भोजन के चार-पांच दिन तक अनाहार रह जाते थे ।

इस व्यक्ति का क्या उद्देश्य है, स्वामीजी समझ गये । वह व्यक्ति भी पक्का धूर्त था । अपने सामने स्वामीजी को घोल पी जाने के लिए आग्रह करता रहा ताकि इनका मौन भंग हो जाय । पीड़ा से चिल्लाने लगें । स्वामीजी बिना हिचके सारा घोल पी गये । इस व्यक्ति का अन्दाजा था कि थोड़ी देर बाद स्वामीजी छटपटाने लगेंगे ।

थोड़ी देर बाद स्वामीजी अपने स्थान से उठकर एक स्थान पर पेशाब करने लगे। पेशाब के साथ सारा चूना निकल गया। इशारे से उस व्यक्ति को बुलाकर उन्होंने यह दृश्य दिखाया।

उस दृश्य को देखते ही भय से उसकी आँखें फटने लगीं। बिना कुछ बोले वह तेजी से घर की ओर भाग गया। घर पर आते ही पेट-पीड़ा से छटपटाने लगा। उसकी चिन्ताजनक स्थिति देखकर परिवार के लोग घबड़ा गये। अचानक इसे क्या हो गया। पूछने पर उसने अपने पाप की कहानी सुनायी। परिवार के वृद्ध पुरुष ने कहा—"इसे डाक्टर वैद्य ठीक नहीं कर सकेंगे। इसे तुरत स्वामीजी के पास ले जाओ। अगर वे क्षमा कर देंगे तो ठीक होगा, वर्ना सन्तों के साथ छल करने का पाप भोगेगा।"

इस सुझाव को मानकर लोग उसे तैलंग स्वामी के पास ले आये। परिवार के सदस्यों के अलावा उसने स्वयं स्वामीजी के पैर पकड़कर क्षमायाचना की।

करुणामय की करुणा जागी। उन्होंने उसके पेट और मस्तक पर हाथ फेरा। थोड़ी ही देर में कष्ट दूर हो गया।

× × ×

इसी प्रकार एक सेठ स्वामीजी की कृपा से लाभान्वित हुआ था। आत्म प्रदर्शन के लिए सोने के दो कड़े वह स्वामीजी को पहनाने के लिए ले आया। स्वामीजी ने उसे सहर्ष ग्रहण कर लिया। यह दृश्य दो ठग देख रहे थे।

इन ठगों ने सोचा—"स्वामीजी इसे किसी को दे देंगे या रात को दूसरा कोई चोरी कर लेगा। क्यों न हम ठग लें। इस कल्पना के आधार पर इन लोगों ने अभिनव योजना बनायी। बाजार से चार बोतल शराब खरीद कर ले आये। जब घाट सूना होने लगा तब दोनों स्वामीजी को शराब पिलाने लगे। उनका ख्याल था कि दो या तीन बोतल पीते ही बाबाजी होश खो बैठेंगे।

चौथा बोतल ज्योंही इन लोगों ने खोला त्योंही बाबा ने—"तुम लोगों की नीयत मैं समझ गया हूँ। अपनी इच्छा पहले ही कह देते तो आसानी से कड़े दे देता। लो, ले जाओ। व्यर्थ में शराब खरीदा तुम लोगों ने। मुझ पर इसका न कोई असर पड़ा और न पड़ेगा।"

इस प्रकार अनेक मूल्यवान सामग्री तैलंग स्वामी लोगों को बांट देते थे। इसी लालच से कुछ दरिद्र भक्त उन्हें घेरे रहते थे।

दशाश्वमेध घाट के जिस स्थान पर स्वामीजी रहते थे, वहाँ वे हमेशा पूर्ण रूप से नंगे रहते थे। अपने स्थान से अन्यत्र जाते समय कोपीन जरूर पहन लेते थे।

एक बार कुछ सैलानी यात्रियों की शिकायत पर पुलिस तैलंग स्वामी को पकड़ ले गयी। मुगलों का शासन समाप्त हो गया था। जिलाधीश अंग्रेज था। उसकी अदालत में स्वामीजी को पेश किया गया।

सारी बातें सुनने के बाद जिलाधीश ने कहा—"स्वामीजी, समाज में इस तरह रहना कानूनन अपराध है । मैं यह जानता हूँ कि भारतीय संन्यासी अधिकतर नंगे रहते हैं । पर वे मठ में रहते हैं । खुले आम सड़क पर नंगे रहने पर सजा होगी । अगर आपको लोगों के बीच रहना है तो कपड़े पहनकर..........।

कहते-कहते जिलाधीश रुक गया । उसने यह देखा कि स्वामीजी मेरी बातों पर ध्यान देने की जगह वह दूसरी ओर देख रहे हैं । यह उपेक्षा उसके लिए असहनीय हो उठी । उसने आदेश दिया—"बाबाजी को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया जाय।"

स्वामीजी को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ज्योंही कठघरे के पास आयी त्योंही वे गायब हो गये । सारी अदालत भौचक्क रह गयी ।

'स्वामीजी पकड़े गये हैं', सुनकर काशी के अनेक नागरिक अदालत में आये थे । जिलाधीश के फैसले पर लोग अप्रसन्नता प्रकट कर रहे थे । तभी यह घटना घटी और लोग खुशी से नाच उठे—"हर-हर महादेव ! बाबा साक्षात् भोलेनाथ हैं । उनकी नगरी में उन्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है ?"—कहने लगे ।

जिलाधीश के आदेश पर अदालत के बाहर उनकी खोज की गयी, पर कहीं कुछ पता नहीं चला । इस अपमान से जिलाधीश बौखला गया ।

बाबा के एक बंगाली भक्त इसी अदालत में जज थे । जब उन्हें बाबा की गिरफ्तारी की सूचना मिली तब वे तुरन्त जिलाधीश की अदालत में आये । सारी घटना सुनने के बाद उन्होंने जिलाधीश से कहा—"भारत में अधिकांश संन्यासी निर्वस्त्र रहते हैं । धार्मिक स्थलों के नागरिक इनकी इस आदत को बुरा नहीं मानते । फिर तैलंग स्वामी सिद्ध योगी हैं । आपको उन्होंने अपनी योग-शक्ति दिखाई है । मेरा अनुरोध है कि आप इस मामले को डिसमिस कर दीजिए ।"

बात समाप्त होते ही स्वामीजी पुनः उसी कठघरे में दिखाई दिये, जहाँ वे पहले खड़े थे । जिलाधीश इस चमत्कार से प्रभावित हो गया । उसका सारा क्रोध पल भर में शान्त हो गया ।

बंगाली जज ने पुनः कहा—"पूज्य स्वामीजी के लिए वास-भवन और कारागार समान है । क्रोध, हिंसा, अपमान, भय से आप ऊपर उठ गये हैं । ऐसे महान् विभूति के साथ हमें श्रद्धा का व्यवहार करना चाहिए ।"

अचानक जिलाधीश को मजाक सूझा । उसे यह ज्ञात था कि हिन्दू लोग संन्यासियों के प्रति श्रद्धा रखते हैं । उनका भरण-पोषण करते हैं । उसने तैलंग स्वामी की ओर देखते हुए पूछा—"क्या यह संन्यासी मेरा भोजन ग्रहण कर सकता है ?"

जिलाधीश अंग्रेज होने के कारण निषिद्ध मांस खाता है । इसे हर कोई जानता था और जिलाधीश को ज्ञात था कि हिन्दू गोमांस नहीं खाते । सन्त लोग कोई भी मांस नहीं खाते ।

बाबा को जिलाधीश का उद्देश्य समझते देर नहीं लगी । परिहास का उत्तर परिहास में देने के लिए उन्होंने कहा—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर पहले आपको मेरा भोजन खाना पड़ेगा ।"

जिलाधीश को यह ज्ञात था कि संन्यासी लोग शाकाहारी भोजन खाते हैं । उसने कहा—"जरूर खाऊंगा । लाइये, देखूं ।"

इतना सुनते ही बाबा ने पीछे की ओर हाथ करके टट्टी जिलाधीश के सामने पेश करते हुए कहा—"मेरा आज का भोजन यही है लीजिए, ग्रहण कीजिए ।"

उस समय साहब की हालत ऐसी हो गयी जैसे 'काटो तो खून नहीं' घृणा से उसने नाक सिकोड़ लिया । अपने परिहास का ऐसा कठोर उत्तर मिलेगा, उसे ऐसी आशा नहीं थी । लेकिन उसे यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी ने उपस्थित लोगों के सामने उसे खा लिया । क्षण भर बाद अदालत का कमरा सुगंध से परिपूर्ण हो उठा ।

स्वामीजी के चमत्कारों से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने फैसला दिया—"स्वामीजी अपनी इच्छानुसार रहने को स्वतंत्र हैं । उन्हें परेशान न किया जाय ।"

लेकिन यह फैसला पुलिस विभाग को पसन्द नहीं आया । दरअसल वे लोग स्वामीजी से लाभ नहीं उठा पा रहे थे । घाट के आस-पास रहनेवाले कुछ अवांछनीय तत्त्वों ने पुलिस को मिलाकर स्वामीजी को मार डालने का प्रयत्न किया । इन लोगों ने लोहे का छेदवाला एक सन्दूक बनवाया । इस सन्दूक में स्वामीजी को बन्द करके गंगा में फेंकने का निश्चय करके वे लोग आये ।

स्वामीजी अपनी ऐशी-शक्ति के माध्यम से इन लोगों का उद्देश्य जान चुके थे । इन लोगों के आने पर वे सहसा अपने आसन से उठे और तेजी से दौड़कर गंगा में कूद गये । घाट पर रहनेवाले लोगों ने देखा—नदी में स्वामीजी सूखी लकड़ी की तरह भासमान हैं । जब कुछ लोग उन्हें पकड़ने के लिए नदी में कूदे तब स्वामीजी अदृश्य हो गये ।

कहा जाता है कि वे काशी से त्रिवेणी चले गये थे जहाँ उन्हें संगम के समीप नदी में पद्मासन लगाये बैठे अनेक लोगों ने देखा था ।

× × ×

उन दिनों खालिसपुर मुहल्ले में पण्डित देवनारायण वाचस्पति रहते थे । वे तैलंग स्वामी के कट्टर भक्त थे । उन्हें साक्षात् विश्वनाथ मानते थे । उनके मन में बहुत दिनों से इच्छा थी कि स्वामीजी को अपने यहाँ भोजन करने के लिए बुलाऊं । संकोच के साथ एक दिन स्वामीजी से निवेदन किया तो वे राजी हो गये ।

स्वामीजी को अपने घर पर देखकर वे हर्ष से भाव विभोर हो उठे । भोजन परोसने के बाद वे पास ही बैठकर पंखा झलने लगे । भोजन समाप्त करने के बाद स्वामी ने कहा—"पण्डित पानी तो दिया ही नहीं ।"

अपनी गलती मालूम होते ही वे तुरन्त भीतर गये और थोड़ी देर बाद पानी लेकर लौटे तो देखा—"तैलंग स्वामी पानी पी रहे हैं । भोजन परोसने के समय पानी देना चाहिए, यह बात वाचस्पतिजी भूल गये थे । इधर शुद्ध जल लाने में देर हो

गयी थी । पानी का पात्र जमीन पर रखते हुए उन्होंने तैलंग स्वामी को साष्टांग प्रणाम करते हुए क्षमा याचना की ।"

"मेरी मूर्खता और अज्ञानता को क्षमा कर दें, भगवन् मैं ज्ञानांध हूँ ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—'कल्याण हो ।'

सन् १७८८ ई० में किसी देशी रियासत के राजा सपरिवार काशी-दर्शन के लिए आये । घाट किनारे एक भवन में ठहर गये । काशी के घाटों में दशाश्वमेध घाट का धार्मिक महत्त्व अधिक होने के कारण यहाँ अधिक भीड़ होती है ।

राजा साहब ने निश्चय किया कि इस घाट पर वे पैदल चलकर स्नान करेंगे । लेकिन एक समस्या सामने आयी । रानी साहिबा पर्दानशीन हैं । उनके साथ परिचारिकाओं के अलावा उनकी सखियाँ रहेंगी । काफी ऊहापोह के बाद राजा साहब ने अपने निवास से घाट किनारे तक पर्दे का प्रबंध कराया । पर्दे के बाहर दोनों ओर संतरियों की फौज खड़ी हो गयी ताकि कोई भी बाहरी आदमी भीतर न जा सके । यहाँ तक कि ताक-झांक करने वाले भी किसी का चेहरा देख तक नहीं सकते थे ।

विधि पूर्वक गंगा-स्नान करने के पश्चात् राजा-रानी जब वापस लौटने लगे तो अचानक मार्ग में एक नंग-धड़ंग व्यक्ति को खड़ा देखकर चौंक उठे ।

राजा का सारा शरीर क्रोध से कांपने लगा । पहरे की कड़ी व्यवस्था के रहते यह व्यक्ति भीतर कैसे आ गया ? रानी तथा दासियाँ तक भयभीत हो उठीं । राजा ने तेज आवाज में पूछा—"कौन हो तुम ? भीतर कैसे आये ?"

उस व्यक्ति ने कोई जवाब नहीं दिया । उस व्यक्ति को जवाब न देते देख राजा चीख उठा—'संतरी ।'

राजा की चीख सुनते ही दौड़-धूप मच गयी । रानी अपनी दासियों के साथ भवन की ओर चली गयीं । पहरेदारों के आने के बाद राजा ने पूछा—"यह आदमी भीतर कैसे आ गया ? जवाब दो वर्ना अभी सबको गोली मार दूंगा ।"

पहरेदारों ने कहा कि हम तो बाहर पहरा दे रहे थे । बाहर से भीतर किसी को आते नहीं देखा गया । राजा साहब इस गुत्थी को नहीं सुलझा सके ।

राजा ने कहा—"इसे गिरफ्तार करके कोठी में ले आओ । वहीं फैसला होगा ।"

कोठी में आकर राजा साहब ने पुनः अपने प्रश्न को दुहराया । इधर तबतक कोठी के बाहर स्वामीजी गिरफ्तार हुए हैं सुनकर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी । राजा के बार-बार प्रश्न करने पर कोई जवाब नहीं मिला । क्रोध से उनकी आकृति लाल होती गयी ।

बाहर के शोरगुल को सुनकर राजा ने पूछा—"क्या बात है ? बाहर कैसा शोर हो रहा है ।"

एक व्यक्ति ने कहा—"अन्नदाता, आपने जिस व्यक्ति को गिरफ्तार किया है, यह साधारण आदमी नहीं है । इनके लिए कुछ करना असाध्य नहीं है । आप सर्वजन आदृत महात्मा तैलंग स्वामी हैं । इनकी गिरफ्तारी से नाराज होकर लोग बाहर आक्रोश

प्रकट कर रहे हैं । अपराध क्षमा करें स्वामी, महात्माजी को तुरन्त छोड़ दिया जाय वर्ना परदेश में झंझट बढ़ सकता है ।"

तैलंग स्वामी का नाम सुनते ही राजा साहब के तनाव में कमी आ गयी । उनके लिए यह नाम अपरिचित नहीं था । मगर स्वामीजी किस उद्देश्य से भीतर गये थे ? वहाँ कैसे पहुँचे ? वे इस समस्या का निराकरण नहीं कर सके । कोठी के बाहर शोरगुल बढ़ता जा रहा था ।

यह राज्य अपना नहीं है । यहाँ ब्रिटिश हुकूमत है और स्थानीय नागरिकों के निकट मेरा कोई मूल्य नहीं है । जो हो गया, सो हो गया । राजा ने कहा—"इस आदमी को कोठी से बाहर निकाल दिया जाय और चारों ओर सख्त पहरा लगाया जाय । आइन्दा ऐसी बात हुई तो सभी को निकाल दूंगा ।"

उस दिन कोठी के भीतर इस घटना की चर्चा बराबर होती रही । स्नानार्थियों के माध्यम से भी नगर के अनेक लोग इस घटना से परिचित हो गये ।

उसी दिन रात के समय अचानक राजा साहब की चीख कोठी में गूंज उठी । चारों ओर से लोग उनके शयन कक्ष में आये तो देखा—वे बिस्तर से नीचे गिरे पड़े हैं । मुँह से झाग निकल रहा है । बेहोश हैं । यह दृश्य देखकर लोग उनका उपचार करने लगे । पूरी कोठी में दौड़-धूप शुरू हो गयी । चिकित्सक आये, पुलिस अधिकारी आये । तरह-तरह की बातें होने लगीं, पर राजा साहब होश में नहीं आये । सबसे अधिक रानी साहिबा बेचैन रहीं ।

शाम के समय राजा को होश आया । अपने आस-पास बैठे लोगों को अच्छी तरह देखने के बाद उन्होंने पूछा—"तैलंग स्वामी आये थे ?"

लोगों ने कहा—"वे यहाँ क्या करने आयेंगे ?"

राजा ने कहा—"वे कहाँ रहते हैं, तुरन्त पता लगाओ । मैं उनके पास जाऊँगा ।"

आज्ञा पाते ही लोग तैलंग स्वामी की खोज में निकल पड़े । कुछ देर बाद लोग वापस आये तो पता चला कि वे पास ही रहते हैं । राजा साहब ने कहा—"मैं अभी कपड़े बदलकर चलता हूँ ।"

जनाना महल में आते ही रानी साहिबा ने पूछा—"क्या बात है । कल तो आपने स्वामीजी को अपमानित करके बाहर निकाल दिया था । अब उनके यहाँ जाकर क्यों झंझट पैदा करना चाहते हो ?"

राजा साहब ने कहा—"मैं झगड़ा मोल लेने नहीं जा रहा हूँ, बल्कि कल अनजाने में मुझसे जो गलती हो गयी थी, उसके लिए क्षमा मांगने जा रहा हूँ ।"

रानी साहिबा अवाक् होकर राजा को देखने लगी । यह देखकर राजा ने कहा—"कल रात को शंकर भगवान् की तरह एक जटाधारी, व्याघ्रचर्म पहने, त्रिशूल हाथ में लेकर भयंकर मूर्ति मेरे सामने आयी थी । उसकी लाल-लाल आँखें थीं । उसने मुझे धमकाते हुए कहा— 'अरे दुराचार, पामर ! तू तैलंग स्वामी के बारे में जानता है । फिर भी तूने उनका अपमान किया ? इसके लिए तुझे समुचित दण्ड

दूंगा । अपना भला चाहता है तो शीघ्र यहाँ से चला जा, वर्ना तेरा सर्वनाश कर दूंगा । तू इस पवित्र भूमि में रहने योग्य नहीं है ।' इसके बाद क्या हुआ, मुझे पता नहीं । तैलंग स्वामी उच्चकोटि के सन्त हैं, इतना ही मुझे मालूम था । समझ में नहीं आता कि सन्तजी उस पर्दे की गलियारे में क्यों आ गये थे । बहरहाल, मैं उनसे क्षमा मांगने जा रहा हूँ । वहाँ से आने के बाद हम यहाँ से चल देंगे ।"

कई लोगों के साथ राजा साहब तैलंग स्वामी के निकट आये । बिना कुछ बोले उनके चरणों पर माथा रखकर रोने लगे । तैलंग स्वामी ने राजा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"उठो राजन्, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ । मेरी भूल थी जो इस तरह वहाँ हाजिर हो गया था । तुम्हारा क्रोध भी स्वाभाविक था ।"

राजा ने सिर उठाकर देखा—स्वामीजी की आकृति पर मुस्कान थी । क्रोध के बदले आशुतोष सन्त से क्षमा मिलते ही राजा के अन्तर का सारा कष्ट दूर हो गया ।

× × ×

इस घटना के कुछ दिनों बाद मंगल ठाकुर नामक एक युवक तैलंग स्वामी के यहाँ बराबर आने लगा । कुछ दिनों के बाद उसने स्वामीजी से कहा—"बाबाजी, आप जैसे योगी का ऐसे स्थान में रहना ठीक नहीं है । बन्दर क्या जाने आदी का स्वाद । यहाँ के लोग स्वार्थी और नीच प्रकृति के हैं । आप अगर उचित समझें तो मेरे यहाँ चलकर रहिये । वहाँ न तो कोई आपकी उपेक्षा करेगा और न छेड़छाड़ । हम दोनों भाई तथा मेरी माँ आपकी सेवा करेंगी । घर में गाय है, दूध-दही मिल जायगा ।"

मंगलदास महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण थे । पंचगंगा घाट पर उनका पुस्तैनी मकान था । बाबा के यहाँ निरन्तर आते रहने के कारण उनके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी । यहाँ उनके साधन-भजन में व्याघात होते देख मंगलदास की इच्छा हुई कि अपने यहाँ बाबा को ले आऊं । बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की ।

चलते समय मंगलदास ने पूछा—"कब नाव लेकर आऊं ताकि आपको कष्ट न हो ?"

बाबा ने कहा—"नाव की जरूरत नहीं है, पर एक बात है । संन्यासियों को गृहस्थों के घर नहीं रहना चाहिए । तुम्हारे घर के सामने घाट पर रहूंगा । क्योंकि मैं जहाँ कहीं भी रहूंगा, वहाँ भक्तों की भीड़ होगी । किसी के घर भीड़ करना उचित नहीं है । इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे घर का उपयोग नहीं करूंगा । जब इच्छा होगी तब घर में और जब घाट में रहने की होगी तब घाट पर रहूंगा ।" मंगलदास ने कहा—"महाराज, मैं आपकी स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं डालूंगा । वह आपका ही भवन है । आपके आगमन से वह पवित्र हो जायगा । आपकी इच्छा का मैं कभी अनादर नहीं करूँगा । यहाँ के लोग आपका मूल्य नहीं समझ पा रहे हैं । मैं आपकी शक्ति को पहचान गया हूँ । आपकी सेवा से मेरा कल्याण होगा, इसी आशा से यहाँ आता हूँ ।"

यह घटना सन् १८१० की है जब स्वामीजी मंगलदास के अनुरोध पर पंचगंगा घाट आये । दशाश्वमेध घाट के बाद पंचगंगा घाट का काशी में विशेष महत्त्व था । धार्मिक लोगों के अलावा इस घाट पर सैलानी लोग भी आते थे ।

इन्हीं दिनों वाराणसी में एक नया जिलाधीश आया जो प्रशासन के मामले में अत्यन्त सख्त था । दो-तीन अंग्रेज महिलाओं की शिकायत पर उसने तैलंग स्वामी की गिरफ्तारी का आदेश जारी किया ।

स्वामीजी को गिरफ्तार कर थाने में बन्द कर दिया गया । इस घटना के कारण शहर में सनसनी फैल गयी । इसके पूर्व की घटना की जानकारी अधिकांश लोगों को थी । जनता की अपार भीड़ थाने के सामने आकर खड़ी हो गयी । इस बात की सूचना जिलाधीश को मालूम हुई । उसने सोचा कि जनता के उग्र विरोध के कारण कहीं बाबा को छोड़ न दिया जाय । वह तुरन्त थाने पर हाजिर हो गया । यहाँ आने पर उसने देखा—तैलंग स्वामी थाने के बाहर आंगन में टहल रहे हैं ।

यह दृश्य देखकर वह थानेदार तथा सिपाहियों को बिगड़ने लगा । थानेदार ने कहा—"हुजूर, हमारी कोई गलती नहीं है । आप स्वयं देख लें दरवाजे में डबल ताला बन्द है । पता नहीं, कैसे बाबा बाहर निकल आये ? हम उन्हें पकड़ने जाते हैं तो गायब हो जाते हैं और फिर थोड़ी देर बाद दिखाई देते हैं । बाबा के भेष में आप कोई जादूगर हैं ।"

जिलाधीश को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ उसने आगे बढ़कर दरवाजे में तालों को टटोला । भीतर झांकने पर अजीब दृश्य दिखाई दिया । कमरे में चारों ओर पानी फैला हुआ था । अजीब बू आ रही थी ।

जिलाधीश ने पूछा—"हवालात में पानी कैसे आ गया ?"

पहरेदार के जवाब देने के पहले ही स्वामीजी ने कहा—"इसे मालूम नहीं । रात को पेशाब करने की इच्छा हुई तो थोड़ा-सा कर दिया । उस समय बाहर आने की इच्छा नहीं हो रही थी । भोर के वक्त मन में आया कि बाहर निकलकर टहल लिया जाय तो निकल आया । पहरेदार ने मुझे नहीं निकाला ।"

जिलाधीश को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ । वह इस बात को जानता था कि भारतीय लोग साधु-फकीरों पर आस्था रखते हैं । उसने आदेश दिया—"साधु को पकड़कर मेरे सामने बन्द करो । देखूं, वह कैसे बाहर निकलता है ?"

स्वामीजी पुनः हवालात में बन्द हो गये । जिलाधीश कुंजी अपने साथ लेकर रवाना हो गये ।

उसी दिन जिलाधीश अपनी अदालत में किसी मुकदमे की बहस को सुन रहे थे । अचानक उसने देखा कि इजलास वाले कमरे से तैलंग स्वामी बाहर निकल आये । इस वक्त वे पूर्ण दिगम्बर थे । यह दृश्य देखकर वह हक्का-बक्का रह गया ।

तैलंग स्वामी ने कहा—"भारतीय सन्तों के बारे में पश्चिम के भोगवादी जानते ही कितना हैं । तुम लोग मुझे बन्दी बनाकर रख सकोगे ? आइन्दा किसी सन्त के साथ छेड़-छाड़ मत करना वर्ना नष्ट हो जाओगे ।"

इस चमत्कार को देखकर जिलाधीश भय से पीला पड़ गया और बेहोश हो गया । चारों ओर अफरा-तफरी मच गयी । स्वामीजी कब, कैसे अन्तर्धान हो गये, इसे कोई जान नहीं सका । सारे शहर में इस घटना की चर्चा होती रही ।

होश में आने के बाद जिलाधीश ने आदेश दिया कि काशी के महान् सन्त तैलंग बाबा नगर में अपनी इच्छानुसार रहने को स्वतंत्र रहेंगे । उनके साथ भविष्य में कोई भी जिलाधिकारी छेड़छाड़ न करे । जिन्हें उनका रहन-सहन पसन्द नहीं, वे उनके सम्पर्क में न आयें ।

परमहंस रामकृष्णजी काशी-दर्शन के लिए आये । आपके साथ रानी रासमणि के दामाद मथुरानाथ विश्वास थे । दरअसल उन दिनों रामकृष्णजी को अधिकतर समाधि लग जाती थी । उसके लिए उनकी रक्षा और देखरेख करने के लिए लोगों की जरूरत पड़ती थी । रानी रासमणि का आदेश था कि ठाकुर को कहीं किसी बात का कष्ट न हो । दिन-रात इनकी सुरक्षा पर ध्यान दिया जाय । बिहार के कई तीर्थों का दर्शन करने के बाद वे काशी आये ।

दशाश्वमेध घाट पर आते ही उनकी आध्यात्मिक शक्ति को एक अज्ञात शक्ति आकर्षित करने लगी । उन्हें समझने में देर नहीं लगी कि कोई दिव्य आत्मा उन्हें आकर्षित कर रही है । मंत्रमुग्ध भाव से वे पैदल ही घाट किनारे-किनारे पूर्व दिशा की ओर बढ़ते गये ।

गर्मी का मौसम था । गर्म तीखी हवा के कारण साथ चलने वाले लोग परेशान थे, पर कौन विरोध करता । परमहंसजी इस समय महाराजाधिराज थे और मथुरानाथ उनके सेवक । परमहंसजी के पैरों में जैसे पंख लग गये थे । वे नंगे पैर तेजी से चल रहे थे । साथ के लोग जूते पहने हुए थे ।

तभी लोगों ने एक अद्भुत दृश्य देखा । सामने से एक नंग-धड़ंग साधु दोनों हाथ फैलाये चला आ रहा है । उनके पीछे कुछ लोग आ रहे हैं । पास आते ही दोनों सन्त आपस में लिपट गये जैसे वनवास के पश्चात् श्रीराम-भरत का मिलन हुआ था । दोनों ही एक दूसरे को मौन होकर देखते रहे । उस छवि का वर्णन करना कठिन है ।

परमहंसजी ने मथुरानाथ तथा साथ आये लोगों से कहा—"आप लोग चुपचाप खड़े हैं ? आप लोगों का यह अहोभाग्य है जो साक्षात् विश्वनाथ का दर्शन कर रहे हैं । ले-ले, चरण-स्पर्श करके अपना इहकाल-परकाल सुधार ले । फिर मौका नहीं मिलेगा ।"

परमहंस के इस आह्वान को सुनते ही सभी लोग तैलंग स्वामी का चरण-रज लेकर सिर से लगाने लगे । मथुरानाथ भी समझ गये कि स्वामीजी अवश्य ही उच्चकोटि के योगी हैं अन्यथा परमहंसजी ऐसा न कहते ।

एकाएक तैलंग स्वामी के साथ आये कुछ लोग तेजी से घाट के ऊपर दौड़कर चढ़ने लगे । इधर तैलंग स्वामी सभी लोगों के साथ अपने आसन पर आये और बड़े आदर के साथ परमहंसजी को पास बैठाया । दोनों ही एक दूसरे को आदर की दृष्टि

से देख रहे थे । तभी जो लोग ऊपर दौड़कर गये थे, वे जलपान की सामग्री लेकर आये ।

परमहंसजी ने अपने साथ आये लोगों से कहा—"बाबा का प्रसाद ले लो । फिर यह अवसर नहीं मिलेगा ।"

लोगों को प्रसाद ग्रहण करते देख परमहंसजी पास बैठे मथुरानाथ की ओर देखते हुए बोले—"बाबा को हम भी खिलायेंगे । देखें, बाबा कितना खाते हैं । काशी आकर अगर साक्षात् विश्वनाथ को भोग नहीं दिया तो यात्रा सफल नहीं होगी ।"

वहाँ से वापस लौटते समय परमहंसजी अपने आप से कहने लगे—"आज बहुत दिनों बाद एक पूर्ण कलायुक्त संत का मैंने दर्शन किया । आहा, कितने सुन्दर लक्षण हैं । माँ काली के सेवक हैं न । माँ जगदम्बा की जिस पर कृपा होगी, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं सतायेगी ।"

मथुरा बाबू ने विस्मय से पूछा—"तैलंग स्वामीजी काली के भक्त हैं, यह आपको कैसे मालूम हुआ ? आप तो उनके आश्रम के भीतर गये नहीं ।"

परमहंसजी ने कहा—"मां काली के भक्तों में जितने लक्षण होते हैं, वह सब स्वामी के अंगों पर मैंने देखा । उन लक्षणों को देखकर विश्वास हुआ । इन आँखों से कुछ छिपा नहीं रहता । बाबा असाधारण योगी हैं । इस बात की जानकारी गले लगते ही मालूम हो गयी । पिछले तीन सौ वर्षों में इस तरह का योगी कोई नहीं हुआ । इन्हें अपने शरीर का कोई ज्ञान नहीं है । जिस बालू पर तुम लोग जूते पहनकर चलने में कष्ट का अनुभव कर रहे थे, उस पर वे लेटे हुए थे । इसी से उनका असाधारणत्व समझ सकते हो ?"

किसी भक्त ने प्रश्न किया—"मगर वे नंगे क्यों रहते हैं । इतने लोग उनका दर्शन करने आते हैं । कुछ न सही कौपीन पहन लेना चाहिए ।"

परमहंसजी ने कहा—"तैलंग स्वामी जैसे महात्मा वैसे नहीं होते । न जाने कितनी साधना-तपस्या कर चुके हैं । इसके लिए तपस्या चाहिए, तब उनकी तरह बना जा सकता है । केवल नंगे रहने से कहीं तैलंग स्वामी बना जा सकता है ? नंगा होने से आनन्द लाभ नहीं होता । यह अभ्यास करने से होता है । तैलंग स्वामी अपने जीवन में कितनी साधना कर चुके हैं, इसे तुम लोग क्या समझोगे ? उनके प्रति जो लोग श्रद्धा रखते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, उनका कल्याण होगा ही । तैलंग स्वामी सबसे पार । शरीर साधारण मनुष्य की तरह है, पर कर्म मनुष्य की तरह नहीं है । शिवत्व प्राप्त कर चुके हैं । विश्वनाथ और तैलंग स्वामी अभेद हैं ।"[१]

इस घटना के बाद से अक्सर परमहंसजी तैलंग स्वामी के आश्रम में आते और दोनों व्यक्ति मौन भाषा में चुपचाप बातें करते । इसे वहाँ बैठे लोग समझ नहीं पाते थे ।

एक दिन घाट पर उपस्थित लोगों ने एक विचित्र दृश्य देखा । परमहंसजी के साथ काफी लोग चल रहे हैं और सभी के सिर पर तथा हाथों में बड़े-बड़े बर्तन हैं ।

---

१. लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) ।

यह काफिला तैलंग स्वामी के आश्रम की ओर जा रहा है । कौतूहल वश कुछ लोग साथ-साथ चलने लगे ।

तैलंग स्वामी घाट पर लेटे हुए थे । परमहंस को काफिले के साथ आते देख वे उठकर खड़े हो गये ।

पास आकर परमहंसजी ने कहा—"आज अपने विश्वनाथ को खीर खिलाऊँगा । देखूँ, मेरे बाबा कितना खाते हैं ?"

परमहंसजी की बातें सुनकर तैलंग स्वामी मुस्करा उठे । वे पालथी मारकर बैठ गये । दनादन कटोरी में खीर उड़ेलकर परमहंसजी उन्हें खीर खिलाने लगे । देखते ही देखते बीस सेर खीर तैलंग स्वामी खा गये ।

उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर चकित रह गये । तैलंग स्वामी के निकटस्थ लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ । वे यह बात जानते थे कि श्रद्धा-प्रेम से कोई वस्तु चाहे जितनी मात्रा में दी जाय, बाबा खा लेते हैं । कभी-कभी एक दो सप्ताह भोजन नहीं करते ।

× × ×

सन् १८२० ई० की घटना है । अब नगर पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था । गंगा उस पार काशी नरेश का शासन चलता था । मुल्क के अनेक राजा और नवाबों को बनारस में नजरबन्द कर दिया गया था । शहर का वातावरण शान्त हो गया था ।

ऐसे समय उज्ञैन-नरेश काशी आये और काशी नरेश के अतिथि हुए । घाट किनारे का सौन्दर्य दिखाने के लिए काशी नरेश बजरे पर उज्ञैन नरेश को लेकर रामनगर से निकल पड़े । दशाश्वमेध घाट पर कुछ देर रुकने के बाद विन्दुमाधव धरहरा के पास आकर रुके । यहाँ से आगे बढ़ते ही उन्हें तैलंग स्वामी घाट किनारे टहलते दिखाई दिये ।

उज्ञैन नरेश ने पूछा—"यह कौन व्यक्ति है जो लोगों के सामने नंगा घूम रहा है ?"

काशी नरेश तैलंग स्वामी से परिचित थे । उन्होंने कहा—"आप तैलंग स्वामी हैं । यहाँ के लोग इन्हें सिद्ध योगी समझते हैं ।"

इतना कहने के पश्चात् काशी नरेश ने कई घटनाओं का जिक्र किया । सारी बातें सुनने के बाद उज्ञैन नरेश ने कहा—"मेरे नगर में अनेक सन्त हैं । उनमें से कुछ विशिष्ट सन्तों से मेरा परिचय है । अगर आपके स्वामीजी नाव पर आना पसन्द करें तो उनका दर्शन कर लूं और परमार्थ चर्चा की जाय ।"

काशी नरेश ने मल्लाहों को नाव घाट किनारे लगाने की आज्ञा दी । कुछ दूर बढ़ते ही लोगों ने देखा कि स्वामीजी हवा में उड़ते हुए नाव पर आकर बैठ गये । बोले—"कहिये राजन्, आप मुझसे क्या पूछना चाहते हैं ?"

उज्जैन नरेश ने अपने जीवन में कभी किसी व्यक्ति को इस प्रकार हवा में उड़ते नहीं देखा था । प्रत्यक्ष रूप से इस चमत्कार को देखकर बजरे पर बैठे सभी विस्मय से भयभीत हो उठे । देर तक सभी लोग गूंगे बने रहे ।

तैलंग स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर दोनों नरेशों ने स्वामीजी को प्रणाम किया । अभी तक वे वाक्-शक्ति हीन रहे । कुछ देर बाद उज्जैन नरेश ने प्रश्न किया—"स्वामीजी, परमात्मा ने हम सबको इस पृथ्वी पर भेजा है । हम यहाँ नाना प्रकार के सुख-दुःख भोगते हैं । इसके बाद हमारी कैसी गति होती है ?"

स्वामीजी ने कहा—"प्रज्वलित अग्नि से जिस प्रकार सहस्रों चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार परमात्मा से अजस्र जीवात्माओं की सृष्टि होती है और अन्त में उसी ब्रह्म में लीन हो जाती है । परमात्मा से उत्पन्न होकर पुनः उसी परमात्मा में लीन होने के कारण यह निश्चित है कि आत्मा और जीवात्मा एक ही परमात्मा से उत्पन्न होते हैं । ज्ञानी मात्र इस बात को जानते हैं कि आत्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा संयुक्त हैं ।"

उज्जैन नरेश ने पुनः प्रश्न किया—"आप तो सिद्ध योगी पुरुष हैं । सिद्ध लोग अपनी ऐशी शक्ति के माध्यम से ईश्वर का दर्शन कर लेते हैं । विश्वास है कि आपका भी उनसे साक्षात्कार हुआ होगा । कृपया यह बतायें कि ईश्वर का रंग-रूप किस प्रकार का है ?"

"ईश्वर का रूप ?" तैलंग स्वामी ने इस शब्द को दुहराया और फिर कहा—"इस जगत् में जितने प्रकार के रूप हैं, वे सब ईश्वर के रूप से निकले हुए हैं और वे भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाशित हैं । ऐसा कोई रूप नहीं है जिसकी तुलना उसके रूप से की जा सके । वह ज्योतिर्मय आनन्द स्वरूप है, इसलिए उसे विश्वरूप कहा गया है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अन्य सभी देवी-देवता उसके स्थूल रूप हैं । मुमुक्षु को स्थूल रूप का आश्रय लेना चाहिए, पहले स्थूल रूप का ध्यान किये बिना सूक्ष्म रूप का दर्शन नहीं मिलता । क्रमशः उनके अविनाशी परम सूक्ष्म रूप की धारणा करते-करते उसका विश्वरूप कैसा है, इसका अनुभव होने लगता है । उस रूप माधुर्य को जिसने नहीं देखा है, उसे कैसे बताया जाये और जिसने देखा है, वह भी पूरी तरह वर्णन नहीं कर सकता । उसे व्यक्त करने की भाषा नहीं है ।"

काशी नरेश ने कहा—"जब साधारण मनुष्य ईश्वर के रूप को प्रत्यक्ष नहीं देख सकता तब तो उसका जीवन ही बेकार है । मनुष्य भी तो परमात्मा की सृष्टि है । संसार के सभी जीव उनकी सृष्टि हैं ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"यह ठीक है कि सभी जीव परमात्मा की सृष्टि हैं, पर बेकार नहीं । एक-एक मनुष्य एक-एक पोथी है । गर्भावास पोथियों का मलाट, कर्मफल सूचीपत्र, दीक्षा ग्रहण इसका विज्ञान, शैशव, किशोर, यौवन, बुढ़ापा, इसका एक-एक अध्याय और जीवन का भले-बुरे कार्य पाठ्य विषय है । जो लोग दरिद्र और सामान्य वस्त्रादि पहनते हैं, वे सामान्य मलाट वाले सामान्य पुस्तक हैं । जो लोग जमींदार, राजा, महाराजा, धनी हैं, वे मजबूत जिल्द, सुनहले अक्षरों से सज्जित, मलाट

वाले ग्रन्थ हैं । जो लोग कम दिन जीवित रहकर विशेष कार्य न करके चोला त्याग देते हैं, वे सब लघु पुस्तिकाएं हैं, जो लोग दीर्घजीवी होकर महान् कार्य कर गुजरते हैं, वे ही वृहद् ग्रन्थ हैं और संसार के सभी लोगों के लिए पठनीय हैं । जो लोग दूसरों को जीवन-निर्माण का उपदेश तो देते हैं, पर स्वयं कुछ नहीं करते, वे व्याकरण हैं । जो लोग राजा-महाराजा आदि की कहानियाँ सुनाकर सभ्य-समाज को गरम रखते हैं, वे इतिहास हैं । जो लोग जगत् के लौकिक घाटा-मुनाफा का विश्लेषण करते हुए दिन गुजारते हैं, वे गणित शास्त्र हैं । जो लोग जड़-जगत का चिन्तन करते रहते हैं, वे भूगोल हैं । जो लोग केवल रंग-रस, आमोद-प्रमोद में जीवन गुजार देते हैं, वे नाटक हैं । जो लोग परोपकार, सत्य, दया, निष्ठा, धर्मचर्चा आदि में समय व्यतीत करते हैं, वे धर्मशास्त्र हैं । जो लोग भगवान् की आराधना करना जीवन का प्रधान कार्य मानते हैं, वे योगशास्त्र हैं । इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य एक-एक ग्रन्थ है । सभी पुस्तकों के अन्त में समाप्त लिखा रहता है अर्थात् मृत्यु । इस बात को स्मरण रखना चाहिए ।"

उज्जैन नरेश ने गहरी सांस लेते हुए कहा—"आज आपने इन उदाहरणों को देकर पर्याप्त ज्ञान दिया । इसके लिए मैं कृतज्ञ रहूँगा । आखिर मनुष्य को मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? कहा जाता है कि चौरासी लाख योनि का चक्कर काटने के बाद जीव मनुष्य-देह प्राप्त करता है । जीवन में उसे क्या करना उचित है ताकि उसे इस आवागमन से मुक्ति मिल जाय ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"मनुष्यत्व प्राप्त होने पर भी मुक्ति-इच्छा सहज नहीं है । विषय-भोग में जबतक क्लेश की उपलब्धि नहीं होती तबतक जीव महा जितेन्द्रिय और योगीन्द्र होने पर भी मुक्ति लाभ नहीं कर सकता । वासना त्याग ही मुक्ति का प्रधान उपाय है । मुक्ति की इच्छा होते ही मुक्ति प्राप्त हो जायगी, ऐसा नहीं होता । अगर महापुरुषों का संग न किया जाय तो मुक्ति का मार्ग कौन दिखायेगा ? सत्पुरुषों का सहवास जीव के लिए सौभाग्य का विषय है । इच्छा करने पर साधु-दर्शन नहीं होता । साधु गण अधिकतर निर्जन स्थानों में रहते हैं । अगर कभी दिखाई दिये तो सहज ही पहचान में नहीं आते । उन्हें पहचान लेने पर वे अपने निकट रखना नहीं चाहते । निकट रहने का अधिकार पाने पर भी उनके निर्मल-हृदय का भाव समझ नहीं पाते । नदी को पार करने के लिए जिस प्रकार नाविक की जरूरत होती है, उसी प्रकार संसार-सागर पार करने के लिए महापुरुषों का संसर्ग प्राप्त करना चाहिए । सत्संग से सब कुछ सुलभ हो जाता है और धीरे-धीरे उन्नत होकर मोक्ष प्राप्त होता है । स्वर्ग-नरक कुछ नहीं है, केवल आत्मा की उन्नति और अवनति मात्र है । आत्मा की उन्नति और अवनति के साथ ही आत्मा की अवस्थान्तर प्राप्ति के साथ उसका विभिन्न स्थानों पर नाना प्रकार के जन्म होते हैं ।"

दोनों नरेश इस तथ्य को कितना समझ सके, इसका उदाहरण स्वामीजी को तुरत मिल गया । उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि राजाओं का यह सब प्रश्न करना श्मशान वैराग्य जैसा है । सहसा काशी नरेश के हाथ से तलवार लेकर स्वामीजी ने उलट-पुलटकर देखने के बाद गंगा नदी में फेंक दिया । तुरन्त ही काशी नरेश का

वैराग्य समाप्त हो गया । तुरन्त बोल उठे—"यह कैसा साधु है जो दूसरों का सामान उठाकर फेंक देता है ? बातें ऊँचे दर्जे की और काम इतना ओछा ।"

उज्जैन नरेश पहले तो अवाक् रह गये । मेजबान को नाराज होते देख उज्जैन नरेश भी कुपित हो गये । तभी एक मल्लाह ने कहा—"घाट किनारे गोताखोर होंगे, महाराज, चिन्ता की कोई बात नहीं है । तलवार मिल जायगी ।"

बजरा घाट किनारे लगते ही जब तैलंग स्वामी नीचे उतरने लगे तब काशी नरेश बिगड़कर बोले—"स्वामीजी, आप चुपचाप बजरे पर बैठे रहिये । जबतक मुझे तलवार नहीं मिल जाती तबतक आप कहीं नहीं जा सकते ।"

काशी नरेश यह भूल गये कि स्वामीजी हवा में उड़कर बजरे पर आये थे । तैरकर या नाव द्वारा नहीं आये थे । उनका समस्त वैराग्य इस वक्त एक तलवार के पीछे समाप्त हो गया था । दरअसल काशी नरेश भीतर ही भीतर इतने क्रोधित हो गये थे कि तलवार न मिलने पर स्वामीजी को बन्दी बनाकर रामनगर ले जाना चाहते थे । अन्तर्यामी बाबा से यह रहस्य छिपा नहीं रहा । वे मन ही मन मुस्कराते रहे ।

बजरा घाट किनारे लगने के पहले ही स्वामीजी ने नदी में हाथ डाला और दो तलवारें देते हुए राजा से कहा—"इनमें से जो तलवार अपनी हो, उसे पहचानकर ले लो ।"

कहाँ एक तलवार के पीछे राजा साहब इतने उत्तेजित हो उठे थे कि वे स्वामीजी को गिरफ्तार करना चाहते थे और इस समय अपनी तलवार पहचानने की समस्या आ गयी । इस अद्भुत काण्ड से उज्जैन नरेश भी मन ही मन घुटन अनुभव करने लगे ।

दोनों राजाओं की मूढ़ता देखकर तैलंग स्वामी ने कहा—"जब तुम अपनी वस्तु को पहचान नहीं पा रहे हो, तब तुम्हारी कैसे हुई ? अगर तलवार तुम्हारी होती तो अवश्य पहचान लेते । जो वस्तु अपनी नहीं है, उसके लिए इतना क्रोध क्यों ? अभी जीवात्मा, परमात्मा, मुक्ति के बारे में जिज्ञासा प्रकट कर रहे थे और क्षण भर में सारा वैराग्य समाप्त हो गया । धिक्कार ऐसे जीवन पर ।"

इतना कहकर उन्होंने एक तलवार राजा को देकर दूसरी को गंगा में फेंक दिया । इसके साथ ही वे नदी में कूद पड़े । देर तक दोनों राजा स्वामीजी के निकलने की प्रतीक्षा करते रहे ताकि अपने अपराध के लिए क्षमा मांगे, पर वे पानी में से नहीं निकले ।

एक मल्लाह ने कहा—"महाराज, शाम हो गयी है । लौट चलिये । स्वामीजी दो-दो, तीन-तीन दिन पानी के भीतर ही रह जाते हैं । निकलते नहीं । पता नहीं, कैसे रहते हैं ?"

कुछ देर तक इन्तजार करने के बाद काशी नरेश ने स्वामीजी के उद्देश्य से गंगा नदी को नमस्कार करते हुए कहा—"मुझसे गलती हो गयी, महाराज । हो सके तो इस पापी को क्षमा कर देना । हम आपको पहचान नहीं सके ।"

× × ×

एक बार कुछ शरारती लड़के जो कि बाबा की लोकप्रियता से असंतुष्ट हो गये थे, उन्हें तंग करने का उपाय सोचा । इधर-उधर से कुछ रुपये एकत्रित करके बाबा के पास आये और कहा—"महाराज, एक दिन हम आपकी सेवा विशेष रूप से करना चाहते हैं, हमें इसके लिए आज्ञा दीजिए ।"

बाबा इन लोगों का उद्देश्य समझ गये, पर कौतुक करने की गरज से कहा—"ठीक है । जब तुम लोगों की इच्छा हो, आ जाना ।"

बाबाजी की स्वीकृति पाते ही लड़के बाजार से मांस और शराब प्रचुर मात्रा में खरीद लाये । पास के एक निर्जन घर में उसे छिपाकर रख दिया । इसके बाद सभी एक वेश्या के यहाँ गये । उसे अपनी सारी योजना बताते हुए कहा—"हम लोग वहाँ मौजूद नहीं रहेंगे । तुम उन्हें खूब शराब पिलाओगी और मांस खिलाओगी ताकि उनकी काम-वासना उभर जाय । अपने हाव-भाव तथा व्यवहार से ऐसा करना । जब वे उत्तेजित हो जायेंगे तब अपने को समर्पित कर देना । अगर इस कार्य में तुम सफल हो जाओगी तो दस रुपये और इनाम दिया जायगा ।"

वेश्या इस कार्य के लिए राजी हो गयी । निश्चित समय लड़के बाबा को उस मकान में ले आये । जब उक्त वेश्या स्वामीजी को मांस खिलाने तथा शराब पिलाने लगी तब शरारती लड़के एक-एक कर उस कमरे से खिसक गये । आड़ में खड़े होकर सारा दृश्य देखने लगे ।

बाबाजी धीरे-धीरे सारा भोजन और शराब पी गये । सामग्री इतनी थी कि बीस आदमी खाकर समाप्त नहीं कर सकते थे । उतनी शराब पीकर सभी बेहोश हो जाते । इतना खाने-पीने के बाद भी बाबा अचल-अटल रूप में बैठे रहे ।

इधर रुपयों की लालच में वेश्या भरसक उनमें उत्तेजना पैदा करने की कोशिश कर रही थी । दो घण्टे तक अथक परिश्रम करने के बाद रंडी स्वयं ही त्रस्त होकर अपने कपड़े सम्हालती हुई बाहर चली गयी ।

उसने कहा—"यह आदमी तो बिल्कुल पत्थर है । मैं अपने कार्य में सफल नहीं हो सकी । मुझे क्षमा कर दें । मैं जा रही हूँ ।"

बाहर खड़े लड़के भीतर का सारा दृश्य अपनी आँखों से देख रहे थे, इसलिए इन लोगों ने वेश्या से कुछ नहीं कहा । वेश्या के जाने के बाद सभी लड़के एक-एक कर भीतर आये ।

एक लड़के ने पूछा—"महाराज, क्या आप इस वक्त आश्रम जायेंगे ?" (बाबा उन दिनों पंचगंगा घाट पर रहते थे जहाँ उनके द्वारा स्थापित दक्षिण कालिका की मूर्ति तथा साधना की सारी सामग्री सुरक्षित है ।)

बाबा ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया । यह देखकर लड़कों को अफसोस होने लगा कि ऐसे महान् सन्त के पतन के लिए हम लोगों ने कितना घृणित कार्य किया ।

कुछ देर शान्त रहने के बाद बाबा ने इन लोगों की ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए कहा—"वह कहाँ गयी ? कहाँ भाग गयी ? कौन मेरे काम का उद्रेक करेगा ? क्या

मैं काम के अधीन हूँ ? तुम लोगों के परदादा के परदादा आज से २०० साल पहले मुझे इसी हालत में देख चुके हैं । इतने दिनों का वृद्ध होने के कारण क्या मैं वीर्यहीन हो गया हूँ ? ले देख—इतना कहकर उन्होंने अपने लिंग को काफी बड़ा करके दिखाया । यह देखकर लड़के डर गये । क्या मानव का इतना बड़ा लिंग हो सकता है ?"

बाद में कुछ सोचकर बोले—"तुम लोग ठहरे बच्चे । वास्तविक साधु-संन्यासियों के बारे में नहीं जानते । खबरदार, आइन्दा कभी साधु-संन्यासियों की परीक्षा मत करना वर्ना जीवित नहीं बचोगे । जाओ तुम लोगों को माफ कर दिया । जितेन्द्रिय योगी का ज्ञान तुम लोगों को नहीं है ।"[1]

परमहंस रामकृष्ण के जाने के बाद बंगाल में तैलंग स्वामी का प्रचार अधिक हो गया । बंगाल के कोने-कोने से लोग युगावतार तैलंग स्वामी का दर्शन करने के लिए आने लगे । ऐसे ही लोगों के साथ कलकत्ता के एक वकील अपने मित्रों के साथ आये ।

कलकत्ता से रवाना होने से पूर्व लोगों ने उनसे कहा था—"काशी तीर्थभूमि है । बाबा विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा तथा अनेक देवी-देवताओं का स्थान है । बड़े भाग्य से काशीधाम की यात्रा का सौभाग्य मिलता है ।"

अपने साथियों की बातें सुनकर वकील साहब ने कहा—"मैं तीर्थ-दर्शन करने के उद्देश्य से नहीं जा रहा हूँ । आप लोग जो चाहे करें । मैं तो तफरीह के लिए चल रहा हूँ । मैं न तो मन्दिर दर्शन करूँगा और न परिक्रमा । मौज करूँगा ।"

वकील साहब की बातें साथियों को नागवार लगने पर भी उन लोगों ने कोई विरोध नहीं किया । यह काफिला काशी आया । विभिन्न मन्दिरों में वकील साहब अपने मित्रों के साथ गये, पर कहीं भी किसी विग्रह के आगे सिर नहीं झुकाया । माला-फूल चढ़ाना तो दूर की बात रही ।

अपनी इच्छा के अनुसार वे चारों घूमते रहे । इसी बीच स्थानीय बंगालियों के माध्यम से तैलंग स्वामी की चर्चा उसने सुनी । वे बड़े अलौकिक योगी हैं । बीमारों को अच्छा कर देते हैं, कष्ट दूर कर देते हैं । कई घण्टे पानी के भीतर रह जाते हैं । गरम बालू जिस पर नंगे पैर चलने से छाले पड़े जाते हैं, उस पर नंगे बदन लेटे रहते हैं ।

ऐसे योगी को देखने के लिए वकील साहब के मन में कौतूहल हुआ । वे तैलंग स्वामी के आश्रम में आये । दरवाजे के पास आकर उन्होंने देखा कि काफी लोग भीतर आ-जा रहे हैं जैसे कोई मन्दिर है । कोई स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम कर रहा है, कोई प्रश्न पूछ रहा है । वकील साहब के लिए यह अद्‌भुत दृश्य था । एक मानव को लोग ईश्वर मानकर पूजा कर रहे हैं ।

अचानक वकील साहब को लगा जैसे पीछे से किसी ने गर्दन में धक्का देकर कहा—"अरे नराधम, अभी तक चुपचाप खड़ा है । तेरा अहोभाग्य है जो तुझे ऐसे महान् योगी का आकर्षण यहाँ तक खींच लाया है ।"

---

१. बिहारी बाबा—श्रीमत् स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, पृ० १३३-३४ ।

वकील साहब ने चौंककर पीछे की ओर देखा—वहाँ कोई नहीं था । आखिर ऐसा आदेश किसने दिया ? ऊहापोह की स्थिति में चारों ओर देखने लगे । बार-बार उनकी नजर स्वामीजी से टकराने लगी । एकाएक एक झटका लगा और उनमें व्यापक परिवर्तन हो गया । पास आकर वे स्वामीजी के चरण पकड़ते हुए बोले—"मेरे अपराध को क्षमा कर दें, प्रभो ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"मैं क्षमा करनेवाला कौन होता हूँ ? जो कुछ करती हैं, वह मेरी माँ करती हैं । वही तुझे क्षमा करेंगी ।"

तैलंग स्वामी के चरण-स्पर्श से वकील साहब की नास्तिक भावना पूर्ण रूप से दूर हो गयी । तीर्थ भूमि की महिमा और सन्तों के आशीर्वाद का ज्ञान उन्हें हो गया ।

काशी से रवाना होने के पूर्व वकील साहब ने मंगलदास के माध्यम से समाचार भिजवाया—"अगर मैं प्रतिमाह स्वामीजी की सेवा के लिए कुछ रकम भिजवाऊँ तो उसे ग्रहण किया जायगा ?"

इस समाचार को सुनते ही तैलंग स्वामी ज्वालामुखी की तरह फूट पड़े—डाक्टर, वकील की रकम का उपयोग नहीं करना चाहिए । उसे यह सब करने को मना कर देना ।

कहा जाता है कि स्वामीजी के जीवनकाल में वकील साहब को भेजने का साहस नहीं हुआ । जब स्वामीजी वैकुण्ठवासी हो गये तब अपने जीवनकाल तक आश्रम की सहायता के लिए कुछ रकम भेजते थे ।[1]

× × ×

बंगाल प्रान्त के श्रीरामपुर तहसील के निवासी जयगोपाल नामक एक युवक काशी में नौकरी करता था । मुसीबत के समय स्वामीजी का आशीर्वाद पाकर संकट मुक्त हुआ था, इसीलिए वह आश्रम में निरन्तर आता था । यहाँ आते समय एक माला और कुछ मिष्टान्न ले आता था । स्वामीजी को माला पहनाकर वह चुपचाप एक ओर बैठ जाता था । स्वामीजी इस बात को जानते थे कि वह केवल श्रद्धा-भक्ति के कारण आता है ।

एक दिन जब वह सोकर उठा तब उसका कलेजा न जाने क्यों जोर-जोर से धड़कने लगा । वह बहुत बेचैन हो उठा । तुरन्त आश्रम की ओर रवाना हो गया ।

स्वामीजी के पास आकर उसने अपने कष्ट का विवरण देते हुए कहा—"महाराज, मुझे इस कष्ट से शीघ्र मुक्ति दिलाइये वर्ना मैं बेमौत मारा जाऊंगा ।"

स्वामीजी ने कहा—"चुपचाप बैठे रहो ।"

इसके बाद स्वामीजी ध्यानस्थ हो गये । थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"शाम को आना । बता दूंगा ।" कहने के साथ ही उसके सिर पर स्वामीजी ने हाथ रखा ।

---

१. विश्वनाथ श्री श्रीतैलंग स्वामी—श्री अमरेन्द्र कुमार घोष ।

स्वामीजी के स्पर्श से उसके कष्ट में कमी हो गयी ।

शाम को जब वह स्वामीजी की सेवा में आया तब उन्होंने कहा—"तुम्हारे पिता अस्वस्थ हो गये थे । आज सबेरे तुम्हें याद कर रहे थे । अब निधन हो गया है । तुम शीघ्र ही घर चले जाओ ।"

यह समाचार सुनकर जयगोपाल सन्न रह गया । घर वापस आकर गाँव जाने की तैयारी करने लगा । थोड़ी देर बाद गाँव से उसके नाम का तार आया जिसमें उसके पिता के निधन का समाचार था ।

तैलंग स्वामी के समकालीन सन्तों में स्वामी भास्करानन्द और श्यामाचरण लाहिड़ी थे । स्वामी भास्करानन्द अक्सर तैलंग स्वामी के यहाँ और कभी तैलंग स्वामी भास्करानन्दजी के यहाँ आते थे । लेकिन इन दोनों सन्तों में कोई भी श्यामाचरणजी के यहाँ नहीं जाते थे । लाहिड़ी महाशय गृहस्थ योगी थे ।

अमेठी नरेश स्वामी भास्करानन्द के शिष्य थे । अपने गुरुदेव के लिए दुर्गाकुण्ड स्थित बाग में एक स्थान बनवा दिया था । बड़े आग्रह के साथ स्वामीजी को वहाँ उन्होंने रखा था ।

एक बार योग की एक प्रक्रिया के सिलसिले में तैलंग स्वामी अमेठी नरेश की कोठी में भास्करानन्दजी के पास आये । दोनों सन्तों ने बातचीत के बाद अपना निर्णय लिया । स्वामी भास्करानन्द ने आनन्दबाग कोठी के पहरेदार को बुलाकर निर्देश दिया—"कोठी का फाटक बन्द कर दो । जबतक मैं आदेश न दूं तबतक फाटक मत खोलना । भीतर से बाहर और बाहर से भीतर कोई नहीं आयेगा-जायेगा । भले ही अमेठी नरेश क्यों न हों । कह देना, यह मेरा आदेश है ।"

'जो हुक्म ।' कहकर पहरेदार चला गया ।

आधे घण्टे बाद बिहार के किसी स्टेट के एक राजा साहब भास्करानन्दजी का दर्शन करने आये । आदेश के अनुसार पहरेदार ने दरवाजा खोलने से इनकार कर दिया ।

राजा साहब गरजे—"जानता है तू मैं कौन हूँ ? अपना भला चाहता है तो दरवाजा खोल दे ।"

पहरेदार ने कहा—"आप कोई भी हों । दरवाजा अब नहीं खुलेगा ।"

एक सामान्य पहरेदार की यह हिम्मत ! वह एक देशी नरेश पर रोब झाड़ रहा है ? राज रोष उमड़ पड़ा । तुरन्त उन्होंने अपने साथ आये प्यादों को हुक्म दिया—"फाटक तोड़ डालो । हम स्वामीजी से मिलकर रहेंगे । देखें, कौन रोकता है ।"

फाटक को टूटते देख पहरेदार यह समाचार देने बाग की ओर दौड़ गया ।

फाटक के टूटते ही राजा साहब और उनके साथ के लोग बाग के भीतर आये तो देखा—तैलंग स्वामी और भास्करानन्द शवावस्था में पड़े हैं । क्या दोनों मर गये हैं या नाटक कर रहे हैं ?

पास आकर राजा ने तैलंग स्वामी को स्पर्श किया । उन्हें स्पर्श करते ही दोनों योगी जाग उठे । दोनों योगियों की तीव्र दृष्टि से राजा का सारा शरीर जलने लगा । वे चीखते हुए भाग खड़े हुए । थोड़ी दूर आगे जाकर गिर पड़े । राजा की यह दशा देखकर प्यादों की दुनिया में हलचल मच गयी । बाद में उन्हें गाड़ी में लादकर वे लोग वापस चले गये ।

कुछ दिनों बाद वे क्षमा मांगने के लिए काशी आये थे तब स्वामीजी ने कहा—"भविष्य में ऐसी गलती करने पर भस्म हो जाओगे ।"

× × ×

योगियों में एक विशेषता यह होती है कि वे अपने योगबल से दूरस्थ योगियों को पहचान लेते हैं । तैलंग स्वामी की मुलाकात कभी स्वामी विशुद्धानन्द से हुई थी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता । लेकिन श्यामाचरण लाहिड़ी स्वामीजी के आश्रम में कई बार गये थे और इनसे विचार-विमर्श करते रहे । अपने इष्ट की प्रेरणा से एक दिन लाहिड़ी महाशय तैलंग स्वामी से मिलने के लिए उनके यहाँ चल पड़े ।

उस समय तैलंग स्वामी अपने भक्तों से घिरे घाट पर बैठे थे । इन्हें दूर से आते देखकर तैलंग स्वामी आकुल भाव से दोनों हाथ फैलाये उनकी ओर बढ़ गये । पास आते ही दोनों योगी गले से लग गये ।

आस-पास खड़े भक्त इस मिलन को चकित भाव से देखते रहे । एक गृहस्थ योगी और दूसरा सर्वत्यागी था । तैलंग स्वामी के भक्त यह मानते थे कि उनके बाबा के समान काशी में दूसरा कोई सन्त नहीं है । भारत के बड़े-बड़े सन्त बाबा के दरबार में आते हैं । बाबा कहीं नहीं जाते । लेकिन एक गृहस्थ बंगाली बाबू को इतना सम्मान क्यों दे रहे हैं ?

दोनों योगी एक दूसरे को देखते रहे । यह एक अपूर्व दृश्य था । कुछ देर यहाँ रहने के बाद श्यामाचरण लाहिड़ी चले गये ।

उनके जाने के बाद किसी भक्त ने पूछा—"अपराध क्षमा करें, महाराज । एक बात समझ में नहीं आयी, इसलिए पूछ रहा हूँ । अभी जो बंगाली बाबू आये थे, वे तो गृहस्थ हैं । बंगाली टोला में रहते हैं । पत्नी है, लड़के हैं । इनसे आप इस तरह मिले जैसे कोई बड़े महात्मा हैं । इन्हें आपने इतना सम्मान क्यों दिया ?"

तैलंग स्वामी ने हंसकर कहा—"तुम्हारी शंका ठीक है । बंगाली बाबू मामूली गृहस्थ नहीं है । बहुत ऊँचे दर्जे के योगी हैं । अगर वे गृहस्थ न होते तो मैं उनके घर जाकर मिलता । जो लोग उन्हें जानते हैं, उनकी शक्ति को पहचानते हैं, वे उनके निकट जाते हैं । तुम लोगों में से कोई भी उनके यहाँ जाओगे तो देखोगे कि उनके

यहाँ भी ऐसे ही भक्त लोग बैठे रहते हैं । दरअसल तुम लोगों के पास वह दृष्टि नहीं है जिसके माध्यम से योगी और भोगी का अन्तर समझ सको । पूर्वजन्म की साधना के कारण इन्हें सामान्य गृहस्थ के घर जन्म लेना पड़ा । यही इनका अन्तिम जन्म है । इसके बाद इन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा । तुम लोगों को दिखाई नहीं दिया होगा, उनके अंग-प्रत्यंग से योग के लक्षण प्रकट हो रहे थे । इनके आगमन की सूचना मुझे पहले मिल गयी थी । ऐसे योगी का सम्मान करना चाहिए । इससे भला होगा ।"

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी से काशी के लोग कम परिचित थे । तैलंग स्वामी के कथन का प्रभाव उनके भक्तों पर पड़ा । फलस्वरूप लाहिड़ी महाशय की ख्याति फैलती चली गयी ।

सन् १८७४ की घटना है । पूज्य पृथ्वी गिरि महाराज के शिष्य स्वामी विद्यानन्दजी महाराज काशी आये और राजघाट स्थित एक मठ में ठहरे । मठ के लोगों ने कहा—"स्वामीजी, बहुत दिनों बाद आपका दर्शन हुआ है । अब कुछ दिन यहाँ ठहर जाइये ताकि हम आप से कुछ लाभ उठा सकें । रानी अहिल्या बाई तथा रानी भवानी ने यहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया है ।"

स्वामीजी ने कहा—"पिछली बार जब आया था तब विश्वनाथ मन्दिर का दर्शन कर गया था । इस बार आने का एक मात्र उद्देश्य है—"तैलंग स्वामी का दर्शन । अगर अवसर मिला तो अन्य महात्माओं के यहाँ भी जाऊँगा ।"

पंचगंगा घाट पर तैलंग स्वामी अपने भक्तों से बातचीत कर रहे थे, ठीक इसी समय स्वामी विद्यानन्द वहाँ हाजिर हो गये । दोनों सन्त आपस में खड़े होकर गले मिलने लगे । उपस्थित लोगों ने अनुमान लगाया कि आगन्तुक सन्त बड़े महात्मा हैं और देखते ही देखते दोनों सन्त हवा में विलीन हो गये । यह घटना अचम्भे की रही । तैलंग स्वामी को गंगा में गायब होते अनेक लोगों ने देखा और सुना है, पर हवा में गायब होते पहली बार देखा । सभी भय से जड़ भरत बने बैठे रहे ।

ठीक आधे घण्टे बाद सहसा तैलंग स्वामी प्रकट हो गये । इस बार स्वामीजी अकेले थे । विद्यानन्दजी नहीं थे । उपस्थित लोगों की समझ में नहीं आया कि आखिर उक्त स्वामी कहाँ गायब हो गये । कुछ लोग कौतूहल वश राजघाट स्थित मठ में गये तो देखा—वहाँ वे उपस्थित लोगों के सामने प्रवचन दे रहे हैं ।

× × ×

बंगाल के एक सन्त थे—श्री अन्नदा ठाकुर । परमहंसजी की जबानी तैलंग स्वामी की यौगिक-शक्ति की प्रशंसा सुनकर काशी आये । अपने साथ अनेक प्रश्न ले आये थे जिनका निराकरण कोई नहीं कर पाया था ।

जिस दिन अन्नदा ठाकुर आनेवाले थे, उस दिन मंगलदास से स्वामीजी ने कहा—"आज फालतू लोगों की भीड़ यहाँ न हो । जो यहाँ उपस्थित रहें, वे शान्ति के साथ बैठे रहे ।"

मंगलदास को समझते देर नहीं लगी की आज कोई उच्चकोटि का विद्वान या सन्त आ रहा है । बाबा के आदेशानुसार सारी व्यवस्था करने के पश्चात् वह दरवाजे के पास आगन्तुक की प्रतीक्षा करने लगा । निश्चित समय पर एक जटाधारी युवक ने बड़े नम्र स्वर में पूछा—"मैं महात्मा तैलंग स्वामीजी महाराज का दर्शन करने आया हूँ । क्या इस अकिंचन को यह सौभाग्य प्राप्त होगा ।"

तभी भीतर से तैलंग स्वामी ने कहा—"चले आओ वत्स ! मैं तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था ।"

भीतर आकर अन्नदा ठाकुर ने देखा—कम्बल आसन पर विपुल काय योगिराज तैलंग स्वामी विराजमान हैं । कमरे के दीवारों पर अनेक श्लोक लिखे हुए हैं । बायीं ओर बेठन में लपेटी हुई कुछ पोथियाँ हैं । स्वामीजी के शरीर पर कौपीन के अलावा अन्य कोई वस्त्र नहीं है ।

स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम करने के बाद अन्नदा ठाकुर ने कहा—"पूज्यवर, आप सर्वज्ञाता और अन्तर्यामी हैं । मेरे आने का कारण आप से छिपा नहीं है । कृपया मेरी शंकाएं दूर कर मुझे ज्ञान प्रदान करें ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"तुम अपनी शंकाओं की निवृत्ति परमहंसजी से करा सकते थे । वे इस युग के महान् योगी पुरुष हैं । वे ही तुम्हारे पथ प्रदर्शक और सहायक हैं । पूर्व जन्म के सुकृत्यों के कारण ही इतनी कम उम्र में उन्नति कर सके हो ।"

अन्नदा ठाकुर मौन रहे । तैलंग स्वामी के कथन का न तो उन्होंने प्रतिवाद किया और न समर्थन ।

तैलंग स्वामी ने कहा—"तुम्हारे मन में जो प्रश्न उठ रहे हैं, उसी तरह के प्रश्न कई लोगों के मन में उठते हैं । यह निराधार प्रश्न हैं ।"

इसके बाद एक पुस्तक को उठाकर सामने रखते हुए तैलंग स्वामी ने कहा—"अब तुम्हें उदाहरण के साथ उन समस्याओं के बारे में बता रहा हूँ जिसके कारण इतनी दूर आये हो । यह जो पुस्तक यहां रखी है, इस स्थान पर व्याप्त है, इसीलिए इसे हम साकार कहते हैं । इसी प्रकार ईश्वर भी अपना स्थान व्याप्त किये हुए हैं, पर हम उन्हें निराकार कहते हैं । जो द्रव्य किसी सीमाबद्ध स्थान को घेरे रहता है, उसे सभी साकार कहते हैं, किन्तु विश्वव्यापी ईश्वर ने किसी सीमाबद्ध स्थान को घेरकर नहीं रखा है । यह विश्व तो अनन्त है, असीम है, ईश्वर जिस स्थान पर व्याप्त है, उसकी सीमा नहीं है, वह भी असीम और अनन्त है, इसलिए निराकार है ।"

अन्नदा ने कहा—"ईश्वर के बारे में अनादिकाल से यह माना जाता है कि वह साकार हैं और निराकार भी । इस सृष्टि के जब वे निर्माता हैं तब तो साकार होंगे ही । साधारण लोग उन्हें नहीं देख पाते, इसलिए निराकार हैं ।"

तैलंग स्वामी इस बात पर हंस पड़े—"बचकाना उदाहरण देते हो । पहले सृष्टि के बारे में जान लो । चैतन्य स्वरूप परमात्मा से पहले आकाश की सृष्टि हुई । इसके बाद आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई

है । इस उत्पत्ति के पश्चात् कारण-गुण से आकाश में तारतम्य विशेष से सत्त्व, रजः और तमः गुण उत्पन्न हुए । इन्हीं अवस्थापन्न आकाशादि को सूक्ष्मभूत, महाभूत और पंक तन्मात्र कहा गया । इन सभी सूक्ष्मभूतों से सूक्ष्म शरीर एवं स्थूलभूत उत्पन्न हुए ।"

अन्नदा ने प्रश्न किया—'सूक्ष्म शरीर ?'

तैलंग स्वामी अन्नदा के चौंकने का कारण समझकर बोले—"हाँ, सप्तदश अवयव विशिष्ट जो शरीर है, उसे सूक्ष्म शरीर कहा जाता है । सप्तदश अवयव विशिष्ट शरीर है—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच वायु, पंच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि । पंच ज्ञानेन्द्रिय यानी चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् । ये सभी ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक-पृथक आकाशादि के सात्त्विक अंश से उत्पन्न होते हैं जैसे आकाश के सत्त्वांश से कर्ण, वायु के सत्त्वांश से त्वक, तेज के सत्त्वांश से चक्षु, चल के सत्त्वांश से जिह्वा और पृथिवी के सत्त्वांश से घ्राण उत्पन्न हुआ है । इसी प्रकार पंच वायु, पंच कर्मेन्द्रियों से विभिन्न वायु और सत्त्व, रजः और तमः प्रकट हुए हैं ।"

कुछ देर चुप रहने के बाद तैलंग स्वामी ने कहा—"आम तौर पर तीन प्रकार के शरीर होते हैं । स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर । एक अन्य प्रकार का शरीर होता है जिसे प्राप्त करना अत्यन्त जटिल कार्य है । वह है—महाकारण शरीर । मुख्यतः तीन प्रकार के शरीरों में पांच प्रकार के कोष हैं । अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञान कोष एवं आनन्दमय कोष ।"

"स्थूल शरीर अन्नरस से उत्पन्न होता है, अन्नरस से इसकी वृद्धि होती है और विनष्ट होकर अन्न रूप में पृथिवी में लय हो जाता है, इसीलिए इसे अन्नमय कोष कहते हैं । दूसरा—पंच कर्मेन्द्रिय के साथ मिलित इस प्राणादि पंच वायु को प्राणमय कोष कहते हैं ।

तीसरा—पंच कर्मेन्द्रिय सहित मिलित मन को मनोमय कोष कहा जाता है ।

चौथा—ज्ञानेन्द्रिय के साथ मिलित इस बुद्धि को विज्ञानमय कोष कहा जाता है । वही विज्ञानमय कोष कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख इत्यादि अभिमानी इहलोक, परलोकगामी जीव के रूप में जाना जाता है ।

पांचवां—कारण-शरीर में सुषुप्ति के समय आत्मा प्रचुर आनन्द भोग करता है, इसीलिए उस कारण-शरीर को कोष कहा जाता है । संतोष ही कारण-शरीर है ।"

इतना कहने के बाद सहसा तैलंग स्वामी चुप हो गये । अन्नदा ठाकुर देर तक स्वप्नाविष्ट की तरह बैठे रहे । इसी समय मंगलदास ने आकर कहा—"अब आप सभी लोग जा सकते हैं । स्वामीजी पूजा करने जायेंगे ।"

× × ×

काशी के दक्षिणी भाग में एक मुहल्ले का नाम सोनारपुरा है । इधर के क्षेत्र में अधिकतर बंगाली लोग रहते हैं । श्रीरामकमल चटर्जी इस मुहल्ले के पुराने वाशिन्दा हैं । घर में पत्नी और एक मात्र पंचवर्षीय पुत्र तथा चटर्जी बाबू रहते हैं । एक

दिन सीढ़ी से पैर फिसल जाने के कारण बालक के सीने की हड्डी टूट गयी । उन दिनों नगर में हड्डी के विशेषज्ञ कम थे । स्थानीय भेलूपुर अस्पताल में काफी दिनों तक इलाज करने के बाद डाक्टरों ने कहा—"इसे कलकत्ता ले जाइए । यहाँ ठीक नहीं हो सकता ।"

कलकत्ता आने पर यहाँ के डाक्टरों ने जांच के बाद कहा—"आपरेशन करना पड़ेगा । लेकिन आपरेशन में एक खतरा है । संभव है कि लड़के की जान चली जाय ।"

डाक्टरों की राय सुनकर रामकमल की आँखों के आगे अंधेरा छा गया । जब इलाज कराने पर मर ही जायगा तब यहाँ रहने से फायदा ? पति-पत्नी अपने बच्चे को लेकर घर वापस आ गये ।

मुहल्ले के लोगों को इस बात की सूचना मिली । एक सज्जन ने सुझाव दिया—"एक बार तैलंग बाबा के पास बच्चे को ले जाइये । सुना है कि उनके आशीर्वाद से अनेक कठिन रोगों के रोगी आरोग्य प्राप्त कर चुके हैं । अगर बाबा की कृपा दृष्टि इस बच्चे पर हो जायगी तो जरूर अच्छा हो जायगा ।" डूबते को तिनके का सहारा । चटर्जी बाबू संन्यासियों के चमत्कार से परिचित थे । उन्हें लगा जैसे तैलंग स्वामी उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं । न जाने क्यों रामकमल चटर्जी के मन में आशा की क्षीण रेखा बन गयी ।

दूसरे दिन स्नान करने के बाद दोनों पति-पत्नी माला-फल लेकर बाबा के दरबार में आये । यहाँ की हालत देखकर दोनों निराश हो गये । एक तो बाबा ने मौन व्रत धारणा कर लिया है, दूसरे किसी को भी दो मिनट से अधिक समय नहीं देते थे । मंगलदास भट्ट तुरन्त बाहर भगा देता था । ऐसी स्थिति में कुछ निवेदन करना कठिन था । फिर भी वे निराश नहीं हुए । बराबर आते रहने के कारण उनके मन में भरोसा उत्पन्न हो गया था ।

एक माह बाद बाबा के इशारे पर एक भक्त ने पूछा—"बाबा यह जानना चाहते हैं कि आप लोग नित्य यहाँ क्यों आते हैं ?" इतना पूछना था कि बच्चे की माँ फफककर रो पड़ी। बाबा के चरणों के पास बच्चे को रखती हुई सारी बातों का उल्लेख किया ।

बाबा एक टक बच्चे को देखते रहे । इसके बाद बच्चे की माँ को थोड़ी-सी मिट्टी देकर बाबा ने कहलाया—"इस मिट्टी का प्रलेप बच्चे की छाती पर लगा देगा । प्रलेप लगाने के बाद बच्चे को तेज बुखार आयेगा । इससे घबराना मत । बुखार उतर जाने पर तेज भूख लगेगी । उस वक्त घर में जो कुछ रहे, खिला देना । दो दिन प्रलेप करना । चिन्ता की बात नहीं है । भगवान् कुशल करेगा ।"

बाबा के निर्देशानुसार चटर्जी बाबू दो दिनों तक प्रलेप लगाते रहे । तीसरे दिन से लड़के में तेजी से सुधार होने लगा । चार दिन बाद लड़का ठीक हो गया । जो कार्य चिकित्सा-विज्ञान नहीं कर सका, वह स्वामीजी की कृपा से हो गया ।

× × ×

कहा जाता है कि एक बार स्वामीजी शिवाला मुहल्ले की ओर गये तो कीनाराम बाबा के कृमिकुण्ड स्थित आश्रम में आये । यहाँ दोनों संन्यासी शराब पीने लगे । कीनारामजी ने मौज में आकर तैलंग स्वामी को काफी शराब पिलाया । तैलंग स्वामी काफी मात्रा में शराब पी गये ।

तैलंग स्वामी के जाने के बाद कीनारामजी ने अपने एक शिष्य से कहा—"स्वामीजी आज बहुत पी गये हैं । कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय । तुम उनके पीछे-पीछे जाओ । अगर कहीं कोई बात हो जाय तो सम्हालकर उन्हें उनके आश्रम तक पहुँचा देना ।"

शिष्य कृमिकुण्ड के आश्रम से बाहर निकला तो मार्ग में कहीं भी तैलंग स्वामी दिखाई नहीं दिये । लोगों से पूछने पर पता चला कि वे अस्सी की ओर गये हैं । अस्सी घाट पर आने पर शिष्य ने देखा—तैलंग स्वामी गंगा नदी के ऊपर ध्यानस्थ हैं । यहाँ से वापस आकर उसने सारी बातें कीनाराम बाबा को सुनायी ।

तैलंग स्वामी अक्सर शाम के समय अपने आश्रम से चलकर कालभैरव दर्शन करने आते थे । वापस लौटते समय एक दूध वाले के अनुरोध पर उसके यहाँ दूध पीते थे । कहा जाता है कि कभी-कभी कड़ाही उठाकर बीस सेर दूध पी जाते थे । बाबा के जाने के बाद शेष दूध को प्रसाद रूप में ग्राहक खरीद ले जाते थे । इस प्रकार उस ग्वाले का सारा दूध शीघ्र बिक जाता था । जब कभी वे इधर नहीं आते थे तब उसकी बिक्री देर रात गये तक होती थी ।

तैलंग स्वामी का क्रिया-कलाप अद्भुत था । कभी कड़ाके की सर्दी में ठण्डे पानी से नहाते थे और कभी प्रचण्ड गर्मी में तपते बालू पर लेटे रहते । मंगलदास भट्ट के घर में एक बड़ा गड्ढा था, जिसमें वे बैठ जाते थे और लोग उन पर ठण्डा जल झारी से गिराते थे जिस प्रकार शिवलिंग पर झारी से गिराया जाता है । कभी गंगा में स्नान करने गये तो कई घण्टे डुबकी लगाये रहते या शवासन करते हुए दिन भर तैरते रहते । उनके सोने का तरीका भी विचित्र था । एक कम्बल बिछाते और दूसरा कम्बल ओढ़ लेते थे ।

एक बार आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रचारक श्री दयानन्द सरस्वती काशी आये । वे सनातन-धर्म के विरुद्ध जगह-जगह भाषण देने लगे । उनके प्रभाव में आकर अनेक लोग आर्य-समाज में शामिल होने लगे । उनके तर्क के आगे तत्कालीन पण्डित किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । सनातनियों में आक्रोश बढ़ता ही गया । दुर्गाकुण्ड के समीप पण्डित-समाज में शास्त्रार्थ हुआ । सभी पण्डित हार गये । वाराणसी में 'आर्य-समाज' की स्थापना हो गयी ।

तैलंग स्वामी के निकट कुछ पण्डित आये और अपनी मनोव्यथा सुनाने लगे । सारी बातें सुनने के पश्चात् तैलंग स्वामी ने कागज पर कुछ लिखा और उसे स्वामी दयानन्द के पास भिजवा दिया । कहा जाता है कि उस पत्र को पाने के बाद दयानन्दजी काशी से तुरन्त चले गये । यह सन् १८७० ई० की घटना है ।

× × ×

अम्बालिका नामक एक महिला नित्य गंगा स्नान करने पंचगंगा घाट जाती थी । स्नान करने के बाद वह फल-फूल लेकर बाबा के पास आती थी । तैलंग स्वामी को वह जीवन्त विश्वनाथ समझती थी। अम्बालिका की एक मात्र पुत्री शंकरी थी । कभी-कभी वह भी माँ के साथ स्वामीजी के यहाँ चली आती थी । माँ की भक्ति देखकर वह भी बाबा के प्रति असीम श्रद्धा रखती थी ।

इन्हीं दिनों नगर में जोरों से चेचक फैला । शंकरी इस रोग का शिकार हो गयी । उसकी हालत दिन प्रति दिन बिगड़ती गयी । बेटी की हालत देखकर माँ खाना-नहाना भूल गयी । हमेशा उसकी सेवा में लगी रही ।

एक दिन शंकरी की आवाज बन्द हो गयी । बुलाने पर आँखें नहीं खोलती थी । अम्बालिका समझ गयी कि अब बेटी बच नहीं सकती । फलस्वरूप वह अपने दुःख के आवेग को रोक नहीं सकी और फुक्का मारकर रोने लगी ।

ठीक इसी समय चमत्कार हुआ । शंकरी बोली—"माँ, तुम रो क्यों रही हो ?"

बेटी की बात सुनते ही माँ की घिग्घी बंध गयी । अभी जिसकी आवाज बन्द हो गयी थी, वही बोल रही है । अपने आँसुओं को पोंछती हुई बोली—"तेरा कष्ट अब मुझसे देखा नहीं जा रहा है । तू बोलती कहाँ थी । भगवान् न जाने क्यों रूठ गये हैं ? स्वामीजी भी कृपा नहीं कर रहे हैं । मेरे जैसी कितनी अभागिनों की रक्षा कर चुके हैं ।"

शंकरी ने कहा—"नहीं माँ, स्वामीजी की कृपा हमारे ऊपर है । वे तो तुम्हारे पास खड़े हैं । देखो न ।"

अम्बालिका अपने चारों ओर देखने लगी । तैलंग स्वामी कहीं दिखाई नहीं दिये । वह समझ गयी कि शंकरी का अन्तिम समय आ गया है, वह प्रलाप कर रही है । बोली—"कहाँ हैं स्वामीजी ? मुझे तो दिखाई नहीं दे रहे हैं ।"

माँ की बात सुनकर शंकरी ने आश्चर्य से कहा—"क्या कह रही हो माँ ? स्वामीजी तो तुम्हारे पास खड़े हैं ।" इतना कहने के साथ ही शंकरी ने माँ का हाथ पकड़कर स्वामीजी के चरणों पर रख दिया । तब अम्बालिका को साक्षात् स्वामीजी दिखाई पड़े ।

शंकरी के सिरहाने बैठकर तैलंग स्वामी ने कहा—"तू तो रानी बिटिया है ।" बाद में उसकी माँ से बोले—"तू नाहक घबराती है । तेरी बेटी जल्द अच्छी हो जायगी ।"

दूसरे दिन से शंकरी स्वस्थ होने लगी । पांचवें दिन पूर्ण रूप से ठीक हो गयी ।

अम्बालिका के घर में रामचन्द्र भगवान् की एक लकड़ी की बनी मूर्ति थी । शंकरी खेल-खेल में उस मूर्ति की पूजा करती थी ।

एक दिन उसके मन में आया कि लकड़ी की मूर्ति की पूजा क्यों करूं ? माँ की तरह मैं भी स्वामीजी की पूजा करूंगी । उनकी कृपा से अच्छी हुई हूँ ।

माँ उस समय घर पर नहीं थी । गंगा-स्नान करने गयी थीं । शंकरी गंगा जल और माला लेकर बाहर जाने के लिए तैयार हुई तो देखा—रामचन्द्रजी की मूर्ति गायब है । वहाँ स्वामीजी की मूर्ति है । यह कैसे हो गया, वह समझ नहीं सकी ।

उसके अवाक् होते देख स्वामीजी की मूर्ति बोली—"मैं आ गया हूँ । मेरी पूजा करो बेटी ।"

अब क्या करती ? पूजा करते-करते उसे समाधि लग गयी । समाधि टूटने पर उसने देखा—स्वामीजी की मूर्ति के स्थान पर वही रामचन्द्रजी की काठवाली मूर्ति है । शंकरी ने सोचा—शायद वह सपना देख रही थी । इस वक्त उसे ख्याल नहीं आया कि उसने मूर्ति को जो माला पहनायी थी, वह कहाँ है ।

तुरत स्वामीजी के आश्रम में आयी तो देखा कि स्वामीजी समाधि लगाये बैठे हैं । घर पर स्वामीजी के गले में जो माला पहनायी थी, इस वक्त वह उनके गले में है ।

थोड़ी देर बाद जब स्वामीजी ने आँखें खोली तब शंकरी ने पूछा—"बाबा, यह माला तुम्हें कहाँ से मिली ?" स्वामीजी ने हंसकर कहा—"इसे तो तुमने पहनायी थी ।"

शंकरी यह उत्तर सुनकर दंग रह गयी । माला तो घर पर पहनायी थी और यहाँ बाबा पहने बैठे हैं । वह इस रहस्य को समझ नहीं सकी ।

एक दिन स्वामीजी गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे । मार्ग में शंकरी को देखकर बोले—"चल मेरे साथ । आज हम दोनों एक साथ गंगा नहायेंगे ।" तैलंग स्वामी उसे साथ लेकर घाट पर आये । इसके बाद अकेले नदी में डुबकी लगा गये । कुछ देर बाद पानी के ऊपर आकर बोले—चल, तू भी नहा ले ।

शंकरी ने कहा—"नहीं, मैं तैरना नहीं जानती । डूब जाऊँगी ।"

बाबा ने कहा—"डरती क्यों है ? मेरी पीठ पर सवार हो जा । मैं तुझे ले चलूंगा ।"

बाबा के आदेशानुसार शंकरी उनकी पीठ पर लटक गयी । कुछ दूर आगे तैरते हुए बाबा गये और फिर सड़ाक् से डुबकी लगायी । शंकरी ने आश्चर्य से देखा कि वह पानी के भीतर स्थित एक भवन में खड़ी है । पानी के भीतर मकान देखकर उसे आश्चर्य हुआ ।

स्वामीजी ने पूछा—"बेटी, बताओ तो इस वक्त कहाँ बैठी हो ?"

शंकरी ने चारों ओर देखते हुए कहा—"बाबा, यह तो पानी के भीतर महल जैसा है ?"

'महल तुमने कहाँ देखा है ?'

"दशाश्वमेध घाट के उधर, बहुत आगे । एक बार माँ के साथ वहाँ गयी थी ।"

सामने शंकरी की उम्र के बराबर एक लड़की खड़ी थी । उसकी ओर इशारा करते हुए शंकरी ने पूछा—"बाबा, यह कौन है ?"

तैलंग स्वामी ने कहा—"आप भगवती देवी हैं । इन्हें प्रणाम करो बेटी ।"

देवी को प्रणाम करने के बाद शंकरी ने पूछा—"बाबा, यहाँ हम लोग हैं, पर गंगा माता कहाँ हैं ? हम लोग तो गंगा में थे न ?"

बाबा ने कहा—"चारों ओर हाथ लगाकर देखो ।"

शंकरी ने चारों ओर हाथ लगाया तो पानी ही पानी था । उसे अपूर्व आनन्द मिल रहा था ।

थोड़ी देर बाद शंकरी ने अनुभव किया कि वह उस कमरे में नहीं, बल्कि घाट के किनारे बैठी है । वही गंगा नदी, वही नहाने वाले लोग, वही सीढ़ियाँ हैं । बाबा गंगा-स्नान कर रहे हैं ।

उसने पूछा—"बाबा, अब तक हम लोग कहाँ थे ? यहाँ कैसे आ गये ?"

बाबा ने कहा—"निष्काम धाम में । तुम निष्काम शिशु हो, इसलिए वहाँ पहुँच सकी थी । आओ, चलो ।"

घर आकर शंकरी ने माँ को सारी घटना सुनाई । माँ अवाक् होकर सारी बातें सुनती रही । उसे इस घटना पर विश्वास नहीं हो रहा था ।

× × ×

बाबा के एक भक्त थे—श्री बैकुण्ठनाथ भट्टाचार्य । अस्सी मुहल्ले में रहते थे । बाबा की कृपा से उन्हें अपने कष्टों से मुक्ति मिल गयी थी । इसी कारण वे तैलंग स्वामी को देवता की तरह मानते थे । नित्य तीसरे पहर पैदल अस्सी से पंचगंगा घाट आते और दर्शन करके चुपचाप बाबा का उपदेश सुना करते थे ।

अन्तर्यामी बाबा भी यह जानते थे कि बैकुण्ठ यहाँ निःस्वार्थ भाव से आता है । कभी-कभी उससे छोटा-मोटा काम ले लिया करते थे और जब इच्छा होती तब जाने की आज्ञा दे देते थे । कुछ दिनों के बाद वह दोनों वक्त आने लगा ।

इस प्रकार पांच या छः माह गुजर गये । बरसात का मौसम आ गया । एक दिन तीसरे पहर से पानी बरसने लगा । सड़क और गलियों में पानी भर गया । लगता था जैसे प्रलय काण्ड होगा । यह दृश्य देखकर बैकुण्ठ चिन्तित हो उठा । यहाँ से उसका डेरा लगभग ३-४ मील दूर था ।

रात के आठ बज जाने पर भी बाबा ने जाने का आदेश नहीं दिया । इसी समय आश्रम में बैठे कुछ लोग बाबा को प्रणाम कर मूसलाधार वर्षा में घर जाने को उद्यत हो गये । इन लोगों के साथ बैकुण्ठ भी जाने को तैयार हुआ तो बाबा ने इशारे से मना किया ।

धीरे-धीरे सभी लोग चले गये । समय गुजरता जा रहा था । अचानक घबराकर बैकुण्ठ पुनः घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ तो बाबा ने पुनः बैठने का आदेश दिया ।

कुछ देर बाद बाबा ने दो लाची दाना खाने को दिया । प्रसाद ग्रहण करने के बाद बाबा ने कहा—"सदर दरवाजे की ओर से नहीं, इधर खिड़की वाले रास्ते से जाओ ।"

बाबा के आदेशानुसार उधर से बैकुण्ठ घर की ओर रवाना हुआ । चारों ओर घनघोर अंधेरा था । सहसा कुछ दूर जाने पर बगलवाली गली से एक व्यक्ति लालटेन लेकर निकला । गलियों में नहर जैसा दृश्य था । बैकुण्ठ ने लालटेन वाले व्यक्ति को आवाज दी, पर उसने ध्यान नहीं दिया ।

उसके समीप पहुँचने के लिए बैकुण्ठ जोर लगाकर चलने लगा, फिर भी दोनों की दूरी में कमी नहीं हुई । इस प्रकार घण्टों चलने के बाद बैकुण्ठ अपने घर तक पहुँचा । ज्योंही वह अपने दरवाजे के समीप पहुँचा त्योंही लालटेन लेकर आगे-आगे चलनेवाला व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया ।

बैकुण्ठ सोचने लगा कि आखिर यह व्यक्ति कौन था जो तीन-चार मील तक अंधेरे में उसे प्रकाश दिखाता आया । अगर मेरे मुहल्ले का कोई परिचित रहता तो बार-बार पुकारने पर जरूर आवाज देता या ठहर जाता ।

सहसा उसके चिन्तन में झटका लगा । एकाएक वर्षा रुक गयी । उसने अनुभव किया कि यह बाबा कि कृपा थी । हो न हो, स्वयं बाबा लालटेन लेकर उसे घर तक पहुँचाने आये थे ।[१]

ठीक इसी प्रकार की घटना श्री उमाचरण मुखोपाध्याय के साथ भी हुई थी जिसका उल्लेख आगे किया जायगा ।

× × ×

बंगाल में सर्वश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी, श्यामाचरण लाहिड़ी और प्रभुपाद विजय-कृष्ण गोस्वामी आज तक देवता की तरह पूजित हैं । इनके भक्त स्थान-स्थान पर आश्रम बनाकर भजन-कीर्तन करते हैं ।

एक जमाना था जब विजयकृष्ण गोस्वामी कट्टर ब्राह्म समाजी थे । यहाँ तक कि सम्पूर्ण बंगाल में ब्रह्म समाज के प्रचार-प्रसार के लिए अथक कार्य करने के कारण उन्हें सर्वमान्य नेता मान लिया गया था । आगे चलकर उन्हें ब्रह्म समाज से इतनी वितृष्ण हो गयी कि सब कुछ परित्याग कर वे योग साधना की ओर आकर्षित हो गये ।

शिक्षार्थी के रूप में भारत के अनेक सन्त, योगी और महात्माओं के पास शिष्यत्व ग्रहण करने गये, पर किसी ने इन्हें नहीं अपनाया । कोई कहता—'अभी समय नहीं आया है ।' कोई कहता—"मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ । समय आने पर तुम्हारे वास्तविक गुरु बुला लेंगे ।" ब्रह्म समाज के प्रमुख कार्यकर्ता होने के कारण वे तेजी से प्रत्येक कार्य करना पसन्द करते थे । उसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर गुरु की तलाश में वे चारों ओर चक्कर काटते हुए काशी आये ।

---

१. तैलंग स्वामी—श्री निवारणचन्द्र दास ।

काशी में आकर केदारघाट मुहल्ले में अपने एक परिचित व्यक्ति के यहाँ ठहरे । परिचित व्यक्ति का नाम था—लोकनाथ । आप होमियोपैथी के डाक्टर थे । बड़े आग्रह के साथ उन्होंने गोस्वामीजी को अपनाया, क्योंकि ब्रह्म समाज के कारण भारत के बंगाली समाज में गोस्वामीजी की ख्याति फैल गयी थी ।

लोकनाथ बाबू का आग्रह देखकर गोस्वामीजी ने कहा—"आपके यहाँ केवल सोना है, कारण मैं यहाँ एक विशेष कार्य से आया हूँ । दिन में कब, कहाँ रहूँगा, कब आऊँगा या चला जाऊँगा कोई ठीक नहीं है । आप लोग बंधे नियम से भोजन-शयन करते होंगे । फलस्वरूप मेरे कारण आपको परेशानी हो सकती है ।"

लोकनाथ बाबू ने हंसकर कहा—"मैं आपका उद्देश्य समझ गया । मेरे यहाँ कई कमरे खाली पड़े हैं । आप बाहर वाले कमरे में आसन लगाइये । इस कमरे में रहने पर आपको सुविधा होगी । जब जी चाहे आ-जा सकते हैं ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"इसके लिए आपको अजस्र धन्यवाद । दरअसल मैं यहाँ सन्त-महात्माओं की तलाश में आया हूँ । काशी में अनेक ऐसे महात्मा हैं जिनके बारे में कम लोगों को जानकारी है । अच्छा, आप तो यहाँ के पुराने वाशिन्दे हैं, क्या आपने तैलंग स्वामी का नाम सुना है ?"

लोकनाथ बाबू ने कहा—"तैलंग स्वामी को कौन नहीं जानता ? वे साक्षात् भोलेनाथ हैं । पहले हमारे मुहल्ले में ही रहते थे । आजकल मणिकर्णिका घाट के आगे पंचगंगा घाट पर रहते हैं । जबतक यहाँ थे तबतक कभी-कभी दर्शन करने चला जाता था । पंचगंगा घाट बहुत दूर है । उतनी दूर पैदल जाना इस उम्र में कठिन है । सड़क से जाने पर फिर गलियों के जंजाल में फंस जाना पड़ता है । घाटवाला रास्ता ठीक है ।"

गोस्वामी के शब्दों में—"मैं दिन-रात अपनी इच्छा के अनुसार घूमा करता था । मेरा अधिकतर समय तैलंग स्वामी के निकट गुजरता था । पहले पहल कई दिनों तक वे मुझे देखते ही कुत्ते की विष्ठा, कभी कीचड़, कभी मैला फेंकते और स्वयं अपने शरीर में यह सब पोत लेते थे ताकि घृणावश उनके पास न जाऊँ । बाद में जब उन्होंने खूब ठोंक बजाकर मुझे परख लिया तब बड़ा प्यार करने लगे । खूब खिलाते-पिलाते थे । मेरे प्रश्नों का उत्तर देते थे । उनके पास जाते ही सबसे पहले पूछते—'क्यों रे, खूब भूख लगी है न ?' मेरे 'हाँ' कहने पर वे बैठे हुए लोगों को इशारा करते । तब एक की जगह चार-पांच लोग बाजार से नाश्ता खरीदने के लिए दौड़ जाते । काफी खाद्य सामग्री लोग ले आते थे । मैं अपने लायक हिस्सा रखकर शेष सामग्री स्वामीजी को खाने को कहता । वे भी मुझे खाने को कहते । मैं कौर बनाकर उनके मुँह के पास ले जाता और वे मुस्कराते हुए खा लेते थे । उनकी खुराक अच्छी थी । दोहरे बदन का शरीर था । कभी-कभी केदार घाट में डुबकी लगाते और पंचगंगा घाट उतराते थे। मैं घाटों पर दौड़ता हुआ वहाँ पहुँच जाता था ।"

दरअसल गोस्वामी अपने असली गुरु की तलाश में काशी आये थे । उनका विश्वास था कि काशी में अनेक सन्त हैं, इनमें कोई उनका गुरु होगा जो इन्हें अपना

लेगा । इसी चक्कर में वे तैलंग स्वामी से प्रभावित हुए । स्वामीजी को आजमाने के लिए वे तरह-तरह के प्रश्न पूछा करते थे । गोस्वामीजी यह मानते थे कि योगी और महात्मा प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को देख लेते हैं । उन्हें ईश्वर से एषणा-शक्ति प्राप्त होती है ।

इसी प्रकार के एक प्रश्न के उत्तर में तैलंग स्वामी ने कहा—"गोस्वामी तुममें वे सब लक्षण प्रस्फुटित हो रहे हैं, जो ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक है । अभी वह समय नहीं आया है कि उन सभी बातों का उल्लेख किया जाय । समय आने पर तुम्हारे गुरु स्वतः बता देंगे । तुम ब्राह्म समाजी हो, मूर्ति-पूजा को नहीं मानते । ईश्वर केवल निराकार नहीं है, साकार भी है । सच तो यह है कि वह रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श से परे हैं । जो लोग निराकार उपासना करते हैं, वे यह नहीं जानते कि उनकी उपासना ठीक हो रही है या नहीं ? भक्ति-वृत्ति की चर्चा से कुछ मानसिक उन्नति भले ही हो जाय, पर वास्तविक फल नहीं मिलता । ईश्वरीय तत्त्वज्ञान के लिए साकार चिन्तन का अवलम्बन करने से साकार उपासना होती है । साकार चिन्तन के बिना ईश्वर की महिमा, शक्ति, गुणादि को हृदयंगम नहीं किया जा सकता है ।"

गोस्वामीजी ने पूछा—"बिना गुरु के सही मार्ग का पता तो अपने बल पर लगाया नहीं जा सकता । मैं अपने वास्तविक गुरु की तलाश में भारत-भ्रमण कर रहा हूँ । जिस सन्त के पास जाता हूँ, वह यही कहता है कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ । मुझे शिष्य के रूप में कोई स्वीकार नहीं कर रहा है ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"देखो, तुम गुरु की तलाश में निकले हो । लाहौर में अपनी असफलता से निराश होकर आत्महत्या करने गये थे । ईश्वर प्रेरित फकीर ने तुम्हारी रक्षा की । इस तरह गुरु की तलाश करना व्यर्थ है । मैं जानता हूँ कि तुम्हारे वास्तविक गुरु हैं । समय आने पर वे तुम्हें अपने पास बुला लेंगे । उसके पहले तुम्हें गुरु की महत्ता के बारे में कुछ बता देना चाहता हूँ ताकि तुम्हारा भ्रम दूर हो जाय ।"

इतना कहने के पश्चात् तैलंग स्वामी ने कहा—"मंगल बाहर से अब किसी को भीतर मत आने देना ।" मंगलदास दरवाजा बन्द करके वहीं बैठ गया । इस समय भीतर तैलंग स्वामी, विजय गोस्वामी के अलावा चार भक्त और बैठे थे ।

तैलंग स्वामी ने कहा—"गुरु किसे कहते हैं और उनकी आवश्यकता क्या है, इसे पहले समझ लो । गुरु शब्द का अर्थ है—ग शब्द से गतिदाता, र शब्द से सिद्धिदाता और उ शब्द से कर्त्ता, यानी एक मात्र ईश्वर ही गुरु हैं । उनके बिना जीव की मुक्ति नहीं होती । जो गति-मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, उन्हें गुरु कहा जाता है, इसीलिए ईश्वर और गुरु में प्रभेद नहीं है । इस प्रकार के गुरु को सगुण ईश्वर कहा जाता है । यद्यपि कुछ लोग इसे दूसरे ढंग से कहते हैं । गु का अर्थ अंधकार, रु शब्द का अर्थ निवारक अर्थात् जो अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करते हैं, उन्हें गुरु कहा जाता है । ऐसे गुरु को कभी मनुष्यवत नहीं समझना चाहिए । अगर गुरु पास में हों तो किसी भी देवता की अर्चना नहीं करनी चाहिए । अगर कोई करता है तो

वह विफल हो जाता है । गुरु ही कर्त्ता, गुरु ही विधाता है, गुरु के संतुष्ट होने पर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं । ग वर्ण उच्चारण करने पर महापातक नाश हो जाता है, उ वर्ण उच्चारण करने पर इस जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और रु वर्ण के उच्चारण पर पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं । गुरु ही माता-पिता हैं । शिव के नाराज होने पर गुरु बचा सकते हैं, पर गुरु के नाराज होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता । गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है । गुरु का महत्त्व इसलिए है कि शिष्य को संसार समुद्र से पार कराने की पूरी जिम्मेदारी उनकी है । इसके लिए भगवान् के निकट वे उत्तरदायी होते हैं ।"

कुछ देर चुप रहने के बाद स्वामीजी ने कहा—"गुरु कौन है ? जो सर्वशास्त्रदर्शी, कार्यदक्ष, शास्त्रों के यथार्थ मर्म का ज्ञाता हो, सुभाषी, स्वरूप, विकलांग नहीं, जिनके दर्शन से लोक-कल्याण हो, जो जितेन्द्रिय हों, सत्यवादी, ब्रह्मणशील, ब्राह्मण, शान्त चित्त, पितृ-मातृ हित निरत, आश्रमी, देशवासी हो—ऐसे व्यक्ति को गुरु के रूप में वरण करना चाहिए ।"

गोस्वामीजी ने हँसते हुए कहा—"ऐसे गुरु आजकल मिलते कहाँ हैं ? आजकल के गुरु तो पहले यह देखते हैं कि चेला मालदार है या नहीं, वेतन कितना पाता है, ऊपरी आमदनी होती है या नहीं ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"बात ठीक है, इसीलिए आजकल लोग कुलगुरु से दीक्षा नहीं लेते । योग्य गुरु की तलाश में लगे रहते हैं । कुलगुरु का दीक्षा देना एक प्रकार का व्यवसाय हो गया है । वे कर्म-दोष से गुरु-पद की हानि कर रहे हैं । शिष्य का उद्धार न करने से महापाप होता है । मंत्र-दीक्षा के पश्चात् गुरु-शिष्य कम-से-कम छः माह से लेकर एक साल तक एक साथ रहेंगे । जब दोनों में घनिष्ठता बढ़ जायगी तब उपयुक्त समझकर शिष्य गुरु के निकट ज्ञान-भिक्षा मांगेगा । गुरु कृपा करके शिष्य की भव-यंत्रणा दूर करने के लिए तत्त्वज्ञान उपदेश, दीक्षा-दान करेंगे । अक्सर शिष्य की इच्छा न रहने पर भी गुरु जबरदस्ती दीक्षा देते हैं जो महापाप है । उपयाचक होकर दीक्षा देने का अर्थ है—आर्थिक लोभ । जबतक शिष्य करबद्ध प्रार्थना न करे तबतक दीक्षा नहीं देनी चाहिए । इसके बाद शिष्य ठीक से जप कर रहा है या नहीं, कोई विघ्न तो नहीं हो रहा है, कितनी प्रगति हुई ? इन सभी बातों का ध्यान गुरु को रखना चाहिए ।"

गोस्वामी ने पूछा—"ऐसे सद्‌गुरु की पहचान हम कैसे कर सकेंगे ? शिष्य तो अज्ञानी होता है । सद्‌गुरु की पहचान कैसे कर सकते हैं ?"

तैलंग स्वामी ने कहा—"सड़े-जले बीज से पौधे जन्म नहीं लेते, इसलिए बीज का चुनाव ठीक से करके ही दीक्षा लेनी चाहिए । बीज ठीक करना सद्‌गुरु का कार्य है । सद्‌गुरु सहज ही नहीं मिलते । दीक्षा लेना साधारण बात नहीं है । आवश्यक होने पर आगे भी दीक्षा ली जा सकती है । उपयुक्त गुरु सर्वदा सुलभ न होने के कारण ही मानव की यह दुर्दशा है । कहीं-कहीं छोटे बच्चे और महिलाओं को दीक्षा दी जाती है । लोग यह नहीं जानते कि दीक्षा देना भयानक कार्य है । जो लोग ऐसे

गुरुओं से दीक्षा लेते हैं, वे भी इस बात से अपरिचित रहते हैं । प्राचीनकाल में उपयुक्त शिष्य काफी मिलते थे, इसलिए सद्गुरुओं का अभाव नहीं होता था । भगवान् के लिए अगर तुम्हारा हृदय व्याकुल होगा तब निश्चित है कि भगवान् तुम्हारा सहायक बनकर सद्गुरु से मुलाकात करा देंगे । सद्गुरु राह चलते नहीं मिलते । जबतक मन में सद्गुरु के लिए आशा बलवती न हो तबतक नहीं मिलते और दिल बेचैन रहता है । सत्शिष्य बिना बने सद्गुरु नहीं मिलते । इसी प्रकार सद्गुरु बिना हुए सत्शिष्य नहीं मिलते ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"सद्गुरु के बारे में आपने जो विस्तार से बताया, ऐसे गुरु की खोज करना ही असंभव है ।"

तैलंग स्वामी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया । कई दिनों बाद की घटना है । अचानक आधी रात को तैलंग स्वामी ने कहा—"विजय, जाओ गंगा-स्नान कर आओ । देर मत करो ।"

गोस्वामीजी कभी-कभी तैलंग स्वामी के यहाँ उनका उपदेश सुनने तथा योगैश्वर्य देखने के लिए रात को ठहर जाते थे । जाड़े की रात में गंगा-स्नान के नाम पर गोस्वामीजी कांपने लगे । पूछा—"आधी रात को और वह भी इस सर्दी में नहाकर मरना नहीं है ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"मेरी आज्ञा है, जाओ ।"

"मैं इस वक्त नहाने नहीं जाऊँगा । भले ही स्वयं ईश्वर आकर आदेश दें ।"

तैलंग स्वामी तैश में आ गये—"क्या कहा, नहायेगा नहीं । तुझे अभी मुझसे दीक्षा लेनी है ।"

"मैं आप से दीक्षा क्यों लूंगा ? आप तो खड़े-खड़े शिवलिंग पर पेशाब करते हैं । ऐसे पागल सन्त से भला कौन दीक्षा लेगा ?"

गोस्वामी कहते हैं—"एक दिन देखा कि वे काली मन्दिर में जाकर काली मूर्ति के सामने पेशाब कर रहे हैं और गण्डूष में पेशाब लेकर 'गंगोदकं, गंगोदकं' कहते हुए काली मूर्ति पर छिड़क रहे हैं ।"

मैंने पूछा—'यह क्या कर रहे हैं ।'

बोले—'पूजा ।'

पुनः पूछा—'पूजा की दक्षिणा क्या है ?'

उत्तर मिला—'यमालय ।'

मैं अक्सर रात को तैंलग स्वामी के निकट ठहर जाया करता था । वे रात को अधिकतर योगैश्वर्य दिखाया करते थे । एक दिन मैंने उनसे कहा—"आप मुझे इतनी योग-विभूति दिखाते हैं, पर मुझे विश्वास नहीं होता । कृपया ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि इन घटनाओं पर मेरा विश्वास हो ।"

उन्होंने नहाकर आने का आदेश दिया ।

रात के एक बज चुके थे । भयंकर सर्दी थी । मैं जरा विरोध करने लगा । बस, मेरा गला पकड़कर नदी किनारे ले गये और गंगा में डुबकी दिलाने लगे ।

बाद में मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए बोले—"विश्वास बन जाय ।"

उसी दिन से सचमुच मेरे मन में विश्वास उत्पन्न हो गया । उन्होंने कहा—"अब तुझे मंत्र दूंगा ।"

मैंने कहा—"आपसे मैं मंत्र कैसे ले सकता हूँ ? आप ठहरे साकार उपासक । आप नित्य १०० बेलपत्र और गंगाजल लेकर शिवलिंग पर चढ़ाते हैं, शिव की पूजा करते हैं और दूसरी ओर मैं निराकार ब्रह्मोपासक हूँ, मैं आपको गुरु नहीं बना सकता ।"

बाद में मुझे सावलम्ब और निरावलम्ब उपासना के बारे में देर तक उपदेश देते रहे । उन्होंने कहा—"जिस प्रकार राजा नल को सांप ने काटा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें स्पर्श कर रहा हूँ । इसका गूढ़ तात्पर्य है । मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ । तुम्हारे एक निर्दिष्ट गुरु हैं । वे ही तुम्हें यथा समय दीक्षा देंगे ।" इतना कहने के बाद उन्होंने मेरे कान में तीन मंत्र दिये । एक राधाकृष्ण की युगल-उपासना का मंत्र । यह मंत्र बहुत पहले माँ से प्राप्त हुआ था । दूसरा सर्वदा जप करनेवाला मंत्र यानी भगवान् का नाम । तीसरा आपद-विपद के समय जपने के लिए कहा था ।"[1]

गोस्वामीजी ने पूछा—"बाबा, अब यह बताइये कि मेरे वास्तविक गुरु कहाँ मिलेंगे ?"

"यह जानने से कोई लाभ नहीं । समय आने पर वे स्वयं तुम्हें बुला लेंगे या तुम्हारे पास चले आयेंगे । अपनी इच्छा से कोशिश करने पर तुम उनके पास नहीं पहुँच सकते । उनसे बीज मंत्र पाने के बाद ही तुम्हारा साधक-जीवन प्रारम्भ होगा ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"अर्थात् जब तक मेरे वास्तविक गुरु नहीं मिलेंगे तब तक मुझे इधर-उधर भटकते रहना पड़ेगा ।"

तैलंग स्वामी ने कहा—"प्रतीक्षा तो करनी ही पड़ेगी । लेकिन इस बीच मेरे दिये मंत्र का जप करते रहोगे तो समय की दूरी में कमी हो जायगी । वास्तव में लोग उपासना की पद्धति नहीं जानते, इसलिए सफलता में देर होती है । उपासना के लिए निभृत कक्ष होना चाहिए । पहले कुशासन, उस पर कम्बलासन, उसके ऊपर वस्त्रासन बिछाकर साधक को उत्तराभिमुख बैठना चाहिए । बैठने की मुद्रा ऐसी हो कि शरीर, मस्तक और ग्रीवा रेखा की तरह सीधी रहे । इसके बाद पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए । आँखें बन्दकर, नासिका के अग्रभाग एवं भौंहों के बीच दृष्टि रखते हुए शान्त भाव से गुरु द्वारा प्राप्त बीज मंत्र का जाप करना चाहिए । सुबह और शाम दोनों वक्त करना चाहिए । आधा घण्टा से प्रारम्भ कर निरन्तर समय बढ़ाते जाना चाहिए और तब तक बढ़ाते रहना चाहिए जब तक आलोक दर्शन न हो जाय । इस क्रिया के समय मन को वश में रखना चाहिए, क्योंकि मन बड़ा चंचल है । मन को

१. श्री श्रीसद्गुरु प्रसंग, दूसरा भाग, श्रीब्रह्मचारी कुलदानन्द ।

वश में लाना जरूरी है । मुझसे यह नहीं होगा, कहने से काम नहीं चलेगा । योग-साधना सामान्य प्रक्रिया नहीं है ।"

गया स्थित अपने वास्तविक गुरु से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गोस्वामीजी काशी आये । इस बीच बीस वर्ष व्यतीत हो गये थे । अपने प्रथम गुरु तैलंग स्वामी के आश्रम में आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि आजकल वे मौन रहते हैं ।

गोस्वामीजी को देखकर उन्होंने इशारे से अपने पास बुलाया । उनकी हथेली पर अंगुली चला कर उन्होंने पूछा—'याद है ?'

गोस्वामीजी ने विनय पूर्वक कहा—"हाँ, आपकी कृपा अच्छी तरह याद है । आपने जो मंत्र दिया था, उससे मुझे साधना में सुफल मिला ।"

दिन भर तैलंग स्वामी मौन अवश्य रहते थे, पर बहुत दिनों बाद एक साधक शिष्य को पाकर वे प्रसन्न हो गये थे । रात को गोस्वामीजी से जमकर बातें करते थे । उस समय उन्होंने अजगर व्रत धारण नहीं किया था । जब आगे चलकर उन्होंने अजगर व्रत अपना लिया तब इशारा करना भी बन्द कर दिया था ।

× × ×

काशी में अनादि काल से ऋषि-मुनि रहते आये हैं । आज भी ऐसे सन्त हैं जो यहाँ गोपनीय ढंग से रहते हैं जिनके बारे में सामान्य लोगों को जानकारी नहीं है । जिनके मठ, आश्रम या सम्प्रदाय हैं, केवल उनको जानकारी है ।

काशी ही वह नगरी है जहाँ महर्षि वेदव्यास आये और उनकी स्थापना हुई । शास्त्रार्थ के लिए पतंजलि आये थे । गौतम ने बुद्ध होने पर अपना सर्वप्रथम उपदेश यहीं दिया था । यहाँ के एक चांडाल ने दार्शनिक शास्त्रार्थ में जगद्गुरु शंकराचार्य को परास्त किया था । रामानन्द ने यहीं इस तत्त्व की घोषणा की कि 'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई ।' कबीर ने यहीं अपने उपदेशों का ताना-बाना फैलाया, तुलसी ने यहीं मर्मस्पर्शी भजन गाये । श्री वल्लभाचार्य ने यहाँ आकर 'महाप्रभु की बैठक' स्थापित की तो चैतन्य महाप्रभु ने यहाँ एक मुहल्ले को अपने नाम का प्रसाद दिया । वह चैतन्य वट आज जतनबर कहा जाता है । इस प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय के लोगों का यहाँ आगमन हुआ । इनमें अधिकांश लोगों के मठ आश्रम हैं, परन्तु तैलंग स्वामी ने शिष्यों की बड़ी फौज की स्थापना नहीं की । उनके इने गिने शिष्य थे ।

तैलंग स्वामी के शिष्यों के बारे में श्री उमाचरण मुखोपाध्याय ने लिखा है कि उनके कुल चार शिष्य थे । अन्तिम पांचवां मैं हूँ ।

श्री उमाचरण की यह धारणा गलत है । सम्भवतः उन्होंने पता नहीं लगाया होगा । उन्हें इस सम्बन्ध में पूर्ण सूचना प्राप्त नहीं हुई होगी ।

प्राप्त जानकारी के अनुसार स्वामीजी के शिष्यों की संख्या बीस थी । सर्वश्री कालीचरण सरस्वती, स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, स्वामी भोलानन्द, स्वामी सदानन्द, त्रिपुरलिंग, सच्चिदानन्द, सत्यानन्द, नरसिंहानन्द, कन्हैयालाल, मंगलदास भट्ट (आप के

दो भाई), महादेव भट्ट, श्रीकृष्ण भट्ट, माँ अम्बा देवी, श्रीराम भट्ट, योगेश्वरी माता, राजलक्ष्मी माता, शंकरी माता, केदारनाथ बनर्जी, रामतारण भट्टाचार्य और उमाचरण मुखोपाध्याय ।[१] यदि सामान्य रूप से प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी को मान लिया जाय तो संख्या २१ हो जायगी ।

गृहस्थ शिष्यों में उमाचरण सबसे अन्तिम थे जिनकी जीवनी से बंगाल में तैलंग स्वामी के अनेक भक्त बने ।

उमाचरणजी मुंगेर शहर में स्थित एक दवा कम्पनी में कार्य करते थे । तैलंग स्वामी की ख्याति से प्रभावित होकर वे काशी आये थे । उन्हें शिष्य बनने के लिए कितनी मुसीबतें उठानी पड़ीं इसका विस्तृत विवरण उनकी पुस्तक में प्राप्य हैं । मुंगेर के एक स्कूल में बाबू सुरनाथ चट्टोपाध्याय अध्यापक थे । आप काशी निवासी थे और इनका निजी मकान नारद घाट पर था । इस मकान की देखरेख रामचन्द्र मुखर्जी करते थे । उनके नाम का एक पत्र सुरनाथजी से लेकर उन्हीं के मकान में ठहरे । मकान-मालिक का अतिथि होने तथा बंगाली होने के कारण इन्हें अनेक सुविधाएं प्राप्त हुईं । सुरनाथ मैत्रय ने इन्हें अपने साथ लेकर विभिन्न मन्दिरों का दर्शन कराया । इसी बीच मुखर्जी महाशय एक दिन पंचगंगा घाट जाकर तैलंग स्वामी का दर्शन कर आये ।

बातचीत के सिलसिले में मुखर्जी ने तैलंग स्वामी क़े गुणागुण और क्षमता के बारे में प्रश्न किया तब सुरनाथ ने कहा—"उनक़ी बात मत पूछिये । अजीब बाबा हैं । पागल हैं । न जात-पात का विचार और न रहन-सहन । जो कोई जो कुछ देता है, खा जाते हैं, किसी के साथ बात नहीं करते । हमेशा नंगे पड़े रहते हैं । गर्मी में तप्त बालू पर सोते हैं और जाड़े में गंगा में डुबकी लगाये रहते हैं । सुना है कि दो-दो, तीन-तीन दिन पानी के भीतर रह जाते हैं । कभी-कभी मुर्दे की तरह पानी में भासमान रहते हैं । लोग उन्हें कुंभक योगी कहते हैं । मेरा ख्याल है कि उनकी उम्र सात-आठ सौ साल होगी ।"

दूसरे दिन उमाचरण मुखर्जी गंगा-स्नान करने के बाद सीधे तैलंग स्वामी के आश्रम में आये । उन्हें प्रणाम करने के पश्चात् एक खंभे का सहारा लेकर खड़े हो गये ताकि बाबा को अच्छी तरह देख सकें । उमाचरण अपने साथ अनेक प्रश्न लेकर आये थे । खासकर वे पुनर्जन्म के बारे में पूछना चाहते थे । उनके पास जाकर यह प्रश्न पूछने का साहस नहीं हो रहा था ।

इसी ऊहापोह में थे कि इन्हें चले जाने का आदेश मिला । उमाचरण ने कहा कि कुछ देर और रहने दिया जाय, बाद में चला जाऊँगा । उनके इस आग्रह को अस्वीकार कर मंगलदास भट्ट ने तुरन्त आश्रम के बाहर जाने का आदेश दिया । अत्यन्त क्षुब्ध और दुखित होकर वे डेरे पर वापस आ गये । आते समय निश्चय किया कि अब शाम को पुनः आयेंगे ।

---

१. श्री तैलंग स्वामी—श्री परमानन्द स्वामी ।

उसी दिन शाम को पुनः वहाँ जाकर सबेरे की तरह प्रणाम करने के पश्चात् खम्भे के पास खड़े हो गये । कुछ देर बाद वे अपने प्रश्न को कहना ही चाहते थे कि सबेरे की भांति इस वक्त भी स्वामीजी ने हाथ के इशारे से बाहर जाने का आदेश दिया । यह देखकर मंगलदास ने तुरन्त उनसे कहा कि अब आप चले जाइये । मन का प्रश्न मन में ही रह गया । उमाचरण सबेरे की भांति निराश होकर वापस आ गये ।

दूसरे दिन पुनः गंगा-स्नान करने के बाद बाबा को प्रणाम किया । कल की तरह खंभे के पास खड़े हो गये । आज भी हाथ के इशारे से चले जाने को कहा गया । उमाचरण अपने स्थान से नहीं हटे । यह देखकर मंगलदास ने कहा—'आप चले जाइये ।'

इस आदेश के बावजूद जब उमाचरण नहीं गये तब स्वामीजी ने वहाँ स्थित ग्वाले को इशारा किया । उसने इन्हें बलपूर्वक बाहर कर दिया । उमाचरण इस अपमान से पीड़ित होकर रोते हुए वापस आ गये ।

दिन भर सुबह की घटना के बारे में सोचते रहे । अन्त में निश्चय किया कि मेरे भाग्य में जो कुछ बदा है, वह तो होगा ही, पर अपने प्रश्न का जवाब पाये बिना मैं बाबा को छोड़ूंगा नहीं । शाम के समय उमाचरण पुनः गये । नित्य की तरह प्रणाम कर खंभे के पास खड़े हुए और इन्हें चले जाने का आदेश प्राप्त हुआ ।

अब उमाचरण को इस बात की चिन्ता सताने लगी कि कौन-सा उपाय करूं ताकि यहाँ से निकाला न जाऊँ । काफी विचार करने के बाद उन्होंने मंगलदास को चार और ग्वाले को दो रुपये नजराना देते हुए कहा—"कृपया आप लोग मुझे यहाँ से भगाइयेगा नहीं ।"

दोनों प्रसन्न हो गये । मंगलदास ने कहा—"अगर बाबा आपका ठहरना पसन्द नहीं करेंगे तो मेरे लिए लाचारी है ।बाबा का आदेश मानना ही पड़ेगा ।"

ग्वाले ने कहा—"उस वक्त में यहाँ से गोल हो जाऊँगा ।"

इस निश्चय के पश्चात् उमाचरण खंभे के पास आकर खड़े हो गये । कई क्षण पश्चात् वे प्रश्न को प्रकट करने ही जा रहे थे कि अचानक एक विचित्र घटना हो गयी ।

कलकत्ता से दो बंगाली बाबू आश्रम के भीतर आये । स्वामीजी को प्रणाम करने के पश्चात् वे दोनों खड़े हो गये । कुछ देर बाद स्वामीजी ने इन्हें बाहर चले जाने का आदेश दिया । इनमें एक व्यक्ति नम्र स्वभाव का था, वह वापस जाने के लिए मुड़ा तभी दूसरे व्यक्ति ने नाराज होकर कहा—"तुरन्त मैं नहीं जाऊँगा । साधु-दर्शन के लिए आया हूँ, यहाँ रहने के लिए नहीं आया हूँ । कुछ देर बाद चला जाऊँगा, फिर इतनी नाराजगी क्यों ?"

यह बात सुनकर स्वामीजी ने इशारे से मंगलदास को जताया कि ग्वाले के जरिये इसे आश्रम से बाहर निकाल दो ।

यह आदेश पाते ही ग्वाले ने उस व्यक्ति को धक्का देते हुए कहा—"जल्दी से भागो । बाबा का दर्शन करने आये थे, वह हो गया । अब यहाँ बेकार भीड़ लगाने की जरूरत नहीं ।"

उस व्यक्ति ने ग्वाले को धक्का देते हुए कहा—"मैं नहीं जाऊंगा । जाना है तो तुम जाओ ।"

इस प्रकार दोनों आपस में झगड़ने लगे । यह दृश्य देखकर स्वामीजी ने उक्त बाबू और मंगलदास को अपने निकट बुलाया । इसके बाद दीवार पर संस्कृत में लिखे श्लोकों की ओर इशारा करते हुए मंगलदास को पढ़कर सुनाने का आदेश दिया । मंगलदास उन श्लोकों का मतलब समझाने लगे ।

मंगलदास ने कहा—"तुम बाहर १८ रुपये वाला जूता खोलकर मुझे देखने आये हो । अगर कोई चोरी करके ले जाय तो तुम्हें यहाँ से नंगे पैर वापस जाना पड़ेगा । यही बात तुम सोच रहे हो । अब बताओ कि तुम मुझे देख रहे हो या अपने जूते को देख रहे हो ? सच-सच बताओ, क्या सोच रहे हो ? तुम्हें इसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं है । अब तुम अपना जूता लेकर तुरन्त यहाँ से चले जाओ । अभी तक किसी ने चोरी नहीं की है ।"

वहाँ जितने लोग मौजूद थे, बाबा की राय सुनकर सभी अवाक् रह गये । उमाचरण ने उक्त बंगाली बाबू से पूछा—"कहिये महाशय, क्या आप वास्तव में जूते के बारे में सोच रहे थे ।"

उक्त व्यक्ति ने कहा—"हाँ, महाशय ! वास्तव में मैं अपने जूते के बारे में चिन्ता कर रहा था ।"

यह उत्तर सुनकर उमाचरण चकित रह गये । ऐसी घटना इसके पूर्व कभी सुनने में नहीं आयी थी । इस घटना के कारण तैलंग स्वामी के प्रति उमाचरण की श्रद्धा बढ़ गयी । उन्होंने निश्चय किया कि इस दरबार में चाहे जितना भी अपमान हो, पर वे यहाँ आना बन्द नहीं करेंगे ।

इसके बाद जाने का इशारा करने पर वह व्यक्ति चला गया । कुछ देर बाद बाबा ने इन्हें भी जाने का आदेश दिया । उमाचरण की इच्छा हुई कि कुछ देर और ठहर जायँ, पर साहस नहीं हुआ । वापस लौट आये ।

इसी प्रकार बारह दिनों तक उमाचरण को लगातार वापस आना पड़ा । उन्हें वहाँ बैठने का अवसर नहीं मिला । फलतः वे हताश हो गये । सोचने लगे—क्या मैं इतना बड़ा अभागा हूँ ? एक साधु के पास बैठने का अधिकार मुझे प्राप्त नहीं है ? मुझे देखते ही भगा दिया जाता है । पता नहीं, कितना पाप किया है जो साधु के पास बैठ नहीं सकता ।

तेरहवें दिन उमाचरण अपने दुःख के आवेग को रोक नहीं सके और रो पड़े । दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी । यह देखकर स्वामीजी ने उन्हें बैठने की आज्ञा दी और कहा कि रोना-धोना बन्द करो । स्वामीजी की इस करुणा से उनका

हृदयावेग और तेज हो गया । वे आगे बढ़कर स्वामीजी के चरण पकड़ कर रोने लगे ।

उमाचरण की यह हालत देखकर स्वामीजी ने मंगलदास से संकेत के द्वारा बताया—"इसे जाने को कह दो । कल सबेरे आने को कहो ।"

मंगलदास ने बाबा के आदेश को सुनाया । कल सबेरे आने की आज्ञा प्राप्त होने के कारण उनका हृदय शीतल हो गया । अब उन्हें अनुभव हुआ कि मेरी आशा पूरी हो गयी । दोपहर को घर वापस आ गये । दूसरे दिन के प्रातःकाल की प्रतीक्षा बेसब्री से करने लगे ।

चौदहवें दिन सबेरे गंगा-स्नान करके बड़े उत्साह के साथ आश्रम में आये । स्वामीजी को प्रणाम कर उनके चरण रज को सर्वांग में पोतने के बाद उनके पास बैठ गये । साधु के समीप बैठने का सौभाग्य प्राप्त होते ही हृदय पर से कलुषित आवरण हट गया । उमाचरण अपने आपको पवित्र अनुभव करने लगे ।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने कुछ इशारा किया । फलस्वरूप मंगलदास ने एक पत्थर का टुकड़ा, गेरू और एक लोटा पानी उमाचरण के पास रखते हुए कहा—"बाबा का कहना है कि इसे घिसते रहिये ।"

उमाचरण दोपहर तक गेरू घिसते रहे । स्वामीजी ने इशारे से कहा कि घिसे हुए गेरू को कटोरे में रख दो । इसके बाद घर जाकर भोजन कर आओ ।

बाबाजी के आज्ञानुसार घिसे गेरू को कटोरे में रखने के बाद उमाचरण भोजन करने चले गये । तीसरे पहर वह पुनः आये । आश्रम में आते ही पुनः गेरू घिसने का आदेश हुआ । उमाचरण वही कार्य करने लगे । तीसरे पहर एक ब्रह्मचारी आये और घिसे हुए गेरू से आश्रम के दीवारों पर श्लोक लिखने लगे । देखते ही देखते सारी पिसी हुई गेरू समाप्त हो गयी ।

शाम को घिसी हुई गेरू एक कटोरी में रखने के बाद उमाचरण ने बाबा को प्रणाम किया । आज्ञा पाते ही वे घर वापस आ गये । पन्द्रहवें दिन स्नानादि करने के पश्चात् जब आश्रम में उमाचरण आये तब बाबा ने पुनः गेरू घिसने का आदेश दिया । गेरू बराबर घिसते रहने पर हाथ दर्द करने लगा तो गति मन्द हो गयी । यह देखकर बाबा ने इशारे से हाथ घुमाते हुए जोर से हाथ चलाने का आदेश दिया । उमाचरण डर गये और तेजी से हाथ चलाने लगे । दोपहर तक घिसने के बाद घर आये और भोजन के पश्चात् शाम को जाने पर पुनः गेरू घिसने का आदेश मिला ।

इस प्रकार लगातार पन्द्रह दिनों तक गेरू घिसते-घिसते हाथ की हालत खराब हो गयी । यहाँ तक कि भोजन के वक्त मुँह तक कौर ले जाना कठिन हो गया । उमाचरण सोचते—न जाने कौन-सा पाप किया है जो यह सजा भोगनी पड़ रही है । मुँह खोलकर कुछ कहने का भी साहस नहीं हो रहा था । उमाचरण जितना गेरू घिसते रहे, सारा माल शाम को ब्रह्मचारी श्लोक लिखने में समाप्त कर देते थे ।

इस प्रकार अट्ठाइस दिन गुजर गये । उनतीसवें दिन हालत ऐसी हो गयी कि गंगा-स्नान के पश्चात् गमछे से शरीर पोंछना मुहाल हो गया । तब उमाचरण ने

सोचा—आज अगर गेरू घिसना पड़ा तो यह काम नहीं हो सकेगा । पता नहीं किस पाप के कारण भोगदण्ड प्राप्त हो रहा है । अगर बाबा ने मुझे भगा दिया तो क्या होगा ?

आश्रम में आकर बाबा के चरणों पर माथा टेककर रोने लगे । अन्तर्यामी बाबा उनके कष्ट को समझ गये । इशारे से उन्होंने मंगलदास के जरिये पुछवाया कि बंगाली बाबू हिन्दी लिपि पढ़ना जानते हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में उमाचरण ने कहा—"एक अर्से से बिहार में रहता हूँ । हिन्दी अच्छी तरह जानता हूँ ।"

स्वामीजी ने वेदी के नीचे से बांस का एक चोंगा निकालकर उमाचरण के हाथ में दिया और मंगलदास के जरिये कहलाया—"इसके भीतर के कागजों में जितने श्लोक लिखे हैं, उन्हें बंगला में अनुवाद करना है ।"

इस आदेश को सुनते ही उमाचरण की आँखें प्रसन्नता से खिल उठीं । अब गेरू घिसने से मुक्ति मिल गयी । स्वामीजी के आदेश पर तुरन्त कार्यवाही करने के लिए बाजार से कापी, कलम, दवात खरीद लाये और काम शुरू किया । प्रत्येक कागज के नीचे वे अपना हस्ताक्षर करते गये ।

दोनों वक्त अनुवाद का काम चलता रहा । पांच दिन में उस चोंगे का काम पूरा हो गया । यह जानकर स्वामीजी ने अनुवादित सामग्री को पढ़ने की आज्ञा दी । पाठ समाप्त होने पर सारी सामग्री चोंगे में रख दी गयी । इसके बाद पहले की तरह कम्बल के भीतर दूसरा चोंगा निकालकर देते हुए अनुवाद करने की आज्ञा दी गयी । यह चोंगा पहले वाले से छोटा रहा, इसलिए तीन दिन में काम पूरा हो गया । इसे भी पढ़कर सुनाने की आज्ञा दी गयी । इसके बाद भोजन के लिए छुट्टी दे दी गयी ।

डेरे पर भोजन करके तीसरे पहर स्वामीजी की सेवा में उमाचरण हाजिर हो गये । एक बार इनकी ओर देखने के बाद तैलंग स्वामी आराम से पैर फैलाकर सो गये । उमाचरण ने आगे बढ़कर स्वामीजी का चरण-रज लेकर सिर से लेकर समस्त शरीर में लगाया । आज स्वामीजी चुपचाप लेटे रहे । तभी उमाचरण के मन में आया कि मौका अच्छा है, इस समय अपने प्रश्नों का उत्तर पूछ लूँ ।

अभी मन में यही कल्पना कर ही रहे थे कि स्वामीजी ने मंगलदास के द्वारा इशारे से कहलवाया—"इसे कह दो कि कल दिन में न आकर शाम के समय मेरे पास आये ।"

इस आदेश को सुनकर उमाचरण घर वापस आ गये । आज वे अपने को सभी ओर से मुक्त अनुभव करने लगे । न गेरू घिसने का झंझट और न अनुवाद करने का पचड़ा ।

दूसरे दिन तैलंग स्वामी के आश्रम में आकर स्वामीजी द्वारा स्थापित वृहदाकार महादेव और कालीमूर्ति का दर्शन करने के पश्चात् स्वामीजी के निकट आये । उन्हें प्रणाम कर एक किनारे बैठ गये ।

कुछ देर बाद तैलंग स्वामी उमाचरण को अपने साथ लेकर छोटे कमरे में आये । आते समय मंगलदास वगैरह को आदेश दे गये कि इस कमरे में कोई आने न पाये । इस कमरे में एक आसन बिछा हुआ था और एक प्रदीप जल रहा था । स्वामीजी आसन पर बैठ गये और उनके समीप उमाचरण भी बैठे ।

थोड़ी देर बाद बहुत धीरे से बाबा कहने लगे—"तुम जिस विषय की जानकारी चाहते हो, उसे पूछने में संकोच क्यों ? यह बड़े आश्चर्य की बात है ? त्रिकालदर्शी, आत्मतत्त्वज्ञ महर्षि, देवर्षि, सिद्ध महात्माओं ने अपने तपोबल, ज्ञानबल तथा योगबल से जिसका निर्णय कर गये हैं, उसमें संशय करना उचित नहीं है । उन लोगों ने जो कुछ कहा है, सत्य है । जीव को अपने सुकृति और दुष्कृति के लिए सुख-दुःख भोगने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है, यह बात बिल्कुल सत्य है । मनुष्य अगर चिन्तन करे और प्रयत्न करे तो वह पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और आगामी जन्म के संस्कारों से परिचित हो सकता है । यह बड़े दुःख की बात है कि यह जानने और समझने पर प्रयत्न कोई नहीं करता । मैं तुम्हें जो कुछ बताऊँगा, वह सब सत्य है, इसका क्या प्रमाण है ? और तुम इस पर विश्वास क्यों करोगे ? अब जब तुम मेरे निकट आये हो और इतना कष्ट स्वीकार किया है तब मैं तुमको पुनर्जन्म के बारे में अच्छी तरह समझाऊँगा और दिखाऊँगा । सबसे पहले मैं उन घटनाओं के बारे में बताऊँगा जिसे तुम्हारे अलावा दूसरा कोई नहीं जानता । अगर उन बातों पर विश्वास हो जाय कि सब सत्य है तो बाद में जो कुछ बताऊँगा, उसे तुम भी नहीं जानते, जिसे जानने के लिए व्याकुल हुए हो, तब उसे भी सत्य समझोगे । जब किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है तब वर्तमान जीवन के माल-मसाला अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समष्टि को लेकर होता है । इसलिए इस जीवन में जो विद्वान् हैं, वे अगले जन्म में विद्वान् होंगे । इस जीवन में जो अच्छी तरह बजाता है, वह अपने अगले जीवन में अच्छी तरह बजायेगा । इस जीवन में जो धार्मिक है, अगले जन्म में वह धार्मिक होगा । इस जीवन में जो चोर है, वह अगले जीवन में साधु नहीं हो सकता । जरा अच्छी तरह सोचकर देखो तब समझ सकोगे कि अगर परकाल न होता तो भगवान् को दयामय और सर्वशक्तिमान नहीं कहा जाता । तब सभी कहते कि ईश्वर जितना अन्याय करते हैं, उतना कोई पापी मनुष्य भी नहीं करता ।"

"अगर एक ही जीवन यानी यही जीवन अन्तिम जीवन होता तो कोई राजा, कोई प्रजा, कोई धनी, कोई निर्धन, कोई चपरासी, कोई मेहतर, कोई रोगी, कोई निरोगी न होता । कोई ऐश्वर्य भोग रहा है, किसी को भरपेट भोजन मयस्सर नहीं है—जीवन में इतना प्रभेद क्यों है ? किसी प्रकार का अन्याय कार्य बिना किये किसी को दण्ड भोगना नहीं पड़ता । क्या ईश्वर अच्छे-बुरे पर विचार नहीं करता ? वे सब अपनी इच्छा से मनमानी करते हैं ? कभी नहीं । कर्मफल के अनुसार जीवन में प्रभेद होता है । यह जीवन की आकृति, वर्ण, विद्या, बुद्धि, स्वभाव एवं कर्मफल की समष्टि है, आत्मा और जीवात्मा को लेकर परजन्म का गठन होता है, इसीलिए नाना प्रकार की आकृतियाँ, नाना प्रकार के सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं । जिस प्रकार दर्पण में अपना मुँह प्रशान्त भाव से देखने पर प्रशान्त मूर्ति दिखाई देती है, विकट भंगी से देखने पर

विकटाकार दिखाई देती है, उसी प्रकार सही मार्ग पर चलते हुए गलत कार्य न करने पर इस वक्त जैसी अवस्था है, वैसी अवस्था प्राप्त होती है । विकटाकार अर्थात् अन्याय और असत् कार्य करने पर नीचगामी होना पड़ता है । सत्कर्म तथा धर्म चर्चा करने पर आत्मा की उन्नति होकर उत्तर अवस्था प्राप्त होती है । अगर तुम चोरी करोगे तो राजद्वार में दण्ड मिलेगा । अगर तुम ऐसा नहीं करते तो किसकी मजाल है जो तुम्हें सजा दे । जिस प्रकार पीड़ा होने पर डाक्टर और दवा की जरूरत होती है, उसी प्रकार पीड़ा न होने पर इन दोनों की जरूरत नहीं होती । अब तुम अपने बारे में विवेचना करते हुए देखो कि कैसे वंश में तुमने जन्म ग्रहण किया है ? तुम्हारी आकृति, विद्या, बुद्धि, स्वभाव कैसा है ? इस जीवन में अच्छा बुरा जो भी किया है, उसकी जानकारी तुम्हें है । पूर्वजन्म के अच्छे कार्यों के कारण तुम्हारा ब्राह्मण-कुल में जन्म हुआ । अगर ब्राह्मणोचित कार्य करते हुए सन्मार्ग पर रहोगे तो आत्मोन्नति होगी । पापाचार करोगे तो चाण्डाल के घर जन्म होगा । इस सम्बन्ध में दूसरों से पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है । इस बारे में आगे समझाऊँगा ।"

उमाचरण को इस बीच कुछ कहने का मौका नहीं मिला । वे सोचने लगे कि स्वामीजी ने उनके मन की बात कैसे समझ ली । निस्सन्देह स्वामीजी सर्वज्ञ हैं । स्वामीजी जो कुछ कहेंगे, जो कुछ कह चुके हैं, सब सत्य है । मेरे लिए इन्हें कष्ट सहना पड़ा । यह ख्याल ही नहीं हुआ ।

आगे स्वामीजी ने बताया—"तुम्हारा नाम अमुक है, तुम्हारे पिता का नाम अमुक है, तुम्हारा निवास अमुक गाँव में है, तुम्हारे मकान में इतने कमरे हैं, घर के अमुक दिशा में तालाब है, उसके पास अमुक-अमुक वृक्ष है और तुम्हारे घर में अमुक-अमुक लोग रहते हैं । सारी बातें स्वामीजी ने परिचितों की तरह सुनाई । इन बातों को सुनकर उमाचरण अवाक् रह गये । पुनः जब स्वामीजी ने कहा—"पूर्वजन्म में तुम ब्राह्मण थे । अमुक गाँव में, अमुक नाम से ख्यातिप्राप्त जमींदार थे । बड़े शिष्ट पुरुष थे । दूसरी मंजिल के दक्षिण वाले दरवाजे के ऊपर तुमने संस्कृत के तीन श्लोक लिखे थे जो आज भी मौजूद है । मौका मिले तो जाकर देख आना ।"

इसके बाद स्वामीजी ने कहा—"अमुक गाँव में अमुक नाम का एक व्यक्ति रहता है, वह तुम्हें बहुत चाहता है । तुम भी उन्हें बहुत चाहते हो । इसका क्या कारण है, जानते हो ? वे तुम्हारे पूर्वजन्म के पिता थे । तुम पुत्र और वे पिता होने के कारण पूर्वजन्म का स्नेह बरकरार है । केवल शरीर परिवर्तन होने के कारण एक दूसरे को पहचान नहीं पा रहे हो । तुम्हारा चाचा अमुक नाम से मुंगेर में ही हैं । वे तुम्हें बहुत चाहते हैं । वे नित्य तुम्हारे निकट आकर ९-१० बजे तक रहते हैं । बिना तुम्हें दिन में एक बार देखे उन्हें चैन नहीं मिलता । तुम भी उनके प्रति भक्ति भाव रखते हो । इसका कारण पूर्वजन्म का सम्बन्ध है । केवल शरीर परिवर्तन हो गया है ।"

अन्त में स्वामीजी ने कहा—"यह बातें कहने की आवश्यकता नहीं थी । केवल विश्वास के लिए कहना पड़ा ताकि तुम्हें किसी प्रकार का संदेह न हो । अपने पूर्व-जन्म की सुकृति के कारण तुम्हारा जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ । काशीधाम में आये

हो । अब ऐसे कार्य करो ताकि जन्मजन्मान्तर का भोगदण्ड सहना न पड़े । अगर सत्कृत्य करते रहोगे तो मुक्तिलाभ हो जायगा । वासना त्याग करना ही मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग है ।"

इस प्रकार बातचीत करते-करते रात गुजर गयी । भोर के समय स्वामीजी ने कहा—"अब घर जाकर शौचादि से निवृत्त हो, जल्द से जल्द यहाँ वापस आ जाना । आज हम दोनों एक साथ गंगा स्नान करेंगे । लौटते समय एक कापी लेते आना । तुम्हें कुछ उपदेश दूँगा । उन्हें लिखकर रख देना । इससे तुम्हें लाभ होगा । सारी बातें सुन लेने पर याद नहीं रख सकोगे । इन उपदेशों के अध्ययन पर अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होगी । असली बात जान लेने पर कार्यसिद्धि हो जाती है । मुक्ति के बिना मानव-जीवन की गति नहीं है । सर्वदा मुक्ति की कामना करनी चाहिए । जबतक ज्ञान का उदय नहीं होता तबतक आने-जाने की यंत्रणा भोगनी पड़ती है ।"

घर से वापस आकर स्वामीजी के साथ उमाचरण पंचगंगा घाट पर आये । उनके नहाकर आने के बाद उमाचरण ने स्वामीजी के शरीर को पोंछा । इसके बाद दोनों व्यक्ति आश्रम आये । शाम के समय कापी, कलम और दावात लेकर आने पर स्वामीजी उमाचरण को लेकर छोटी कोठरी में चले गये । यहाँ बैठने के बाद उन्होंने कहा—"आज से नित्य तुम्हें बारह विषयों पर उपदेश दूंगा । उन्हें लिख लेना होगा । वे विषय हैं—सृष्टि, ईश्वर, संसार, गुरु और शिष्य, चित्तशुद्धि, धर्म, उपासना, पुनर्जन्म, आत्मबोध, तन्मयत्व, कुछ महत्त्वपूर्ण बातें और तत्त्वज्ञान ।"

इतना कहने के बाद स्वामी जी बोलते गये और उमाचरण लिखते गये । तेरहवें दिन यह कार्य सम्पूर्ण हो गया ।

उमाचरण के निरन्तर आने-जाने तथा बाबा की सेवा में लगे रहने के कारण अधिकतर लोगों ने अनुमान लगाया कि इन्हें अब स्वामीजी चेला बना लेंगे । इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मंगलदास ने अपनी शंका प्रकट की—"आपने बाबा को वशीभूत कर लिया है । शायद वे आपको अपना चेला बना लेंगे ।"

मंगलदास की बात सुनकर उमाचरण को कौतूहल हुआ । बड़े आग्रह के साथ उन्होंने पूछा—"क्या स्वामीजी ने ऐसा कहा है ?"

"आपको चेला बनाने में अब बाकी क्या रहा ।" अब तक जितने लोग यहाँ आये, उनमें से कोई इतना प्रिय नहीं बन सका जितना कि आप बन गये हैं । बाबा अक्सर कहा करते हैं—"यह बंगाली बाबू बड़े शान्त और सत्स्वभाव के हैं ।"

अपने बारे में बाबा की यह राय सुनकर उमाचरण हर्ष से गद्‌गद् हो उठे । उन्होंने मंगलदास से अनुरोध किया—"बाबा मुझे दीक्षा दे दें, इसके लिए आपको मेरी ओर से सिफारिश करनी होगी ।"

मंगलदास ने इस कार्य के लिए अपनी स्वीकृति दे दी । दूसरे दिन बाबा के पास बैठकर उमाचरण मन ही मन योग-शिक्षा के लिए शिष्य बनने की कल्पना करने

लगे । अभी यह सोच ही रहे थे कि बाबा ने मंगलदास को बुलाकर कहा—"यह बंगाली बाबू मुझसे दीक्षा लेना चाहता है ।"

उमाचरण ने कहा—"जब आपकी मुझपर इतनी कृपा हुई है तब मेरा उद्धार कर दीजिए ।"

"यह अत्यन्त कठिन समस्या है । अब तक तुम आजाद पक्षी की तरह उड़ रहे हो । दीक्षा लेने पर बंधनों में फंस जाओगे । इस वक्त जाओ । रात को आना तब बातचीत की जायगी ।"

शाम के समय आने पर बाबा उन्हें साथ लेकर छोटी कोठरी में आये । यहाँ बैठने के साथ बोले—"तुम मुझसे योग-शिक्षा लेने को सोच रहे हो । लेकिन तुम योग-शिक्षा के लिए अनधिकारी हो । इससे अच्छा है कि उपासना-मार्ग अपनाओ । इसी माघ महीने की तृतीया तिथि, पुष्य नक्षत्र में चन्द्रग्रहण होगा । ग्रहण तक तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । क्योंकि बिना शुद्ध देह हुए दीक्षा नहीं दी जायगी । इसी चन्द्रग्रहण के दिन तुम्हारा शरीर शुद्ध कर दूँगा ।"

इसके बाद कुछ सामानों के नाम लिखवाने के बाद बोले—"गंगा स्नान करने के बाद एक आसन पर बैठकर जप करना पड़ेगा ।"

इसके बाद एक मंत्र उन्होंने लिखवाया और कहा कि जप समाप्त होने के बाद सारी सामग्री किसी सत् ब्राह्मण को दान में देना । उमाचरण को यह मालूम था कि ग्रहण के समय सत् ब्राह्मण दान नहीं लेते । जब उन्होंने यह समस्या स्वामीजी के सामने रखी तब बाबा ने हँसते हुए कहा—"उन सामग्रियों का नाम लेकर जो ब्राह्मण तुमसे दान मांगेगा, उसे दे देना । इससे काम सिद्ध हो जायगा ।"

आसानी से काम सिद्ध हो जाने पर उमाचरण की उत्कण्ठा समाप्त हो गयी । अब वे माघ तृतीया की प्रतीक्षा करने लगे । ग्रहण के दिन सारी क्रिया करने के बाद ज्योंही वे आसन से उठे त्योंही एक ब्राह्मण आया और उन सामग्रियों का नाम लेकर दान मांगा ।

सारी सामग्री लेकर वह व्यक्ति भीड़ में गायब हो गया । दूसरे दिन उमाचरण नित्य की भांति बाबा के पास आकर बोले—"बाबा, आपकी आज्ञा के अनुसार सारा कार्य समाप्त हो गया ।"

"अब तुम्हारा शरीर भी शुद्ध हो गया । तुम्हें दीक्षा दे दूँगा ।"

इसी दिन तीसरे पहर कुछ संन्यासी स्वामीजी के पास बैठे किसी विषय पर विचार-विमर्श करते रहे । बाबा के पास अक्सर ऐसे संत आते रहते हैं । अपनी समस्या का समाधान कराते हैं । सन्तों के जाने के बाद अचानक तेज बारिश होने लगी । यह देखकर उमाचरण ने घर जाने की आज्ञा मांगी । बाबा ने कहा—"अभी नहीं, बैठे रहो ।"

बाहर वर्षा का वेग बढ़ता गया । मकानों से गिरनेवाली जलाधार से गलियाँ भरने लगीं । बिजली के कड़कने और मेघों का गर्जन निरन्तर जारी रहा । दो घंटे

गुजर गये, पर पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था । इस बीच आज्ञा प्राप्त न होने पर उमाचरण ने सोचा—शायद आज बाबा आश्रम में ही रखेंगे ?

इतना सोचना था कि बाबा ने कहा—"अब तुम जा सकते हो ।"

इस आदेश को सुनकर उमाचरण बाबू व्याकुल हो उठे । बाहर वर्षा में कोई कमी नहीं हुई थी । वेग से पानी गिरने और बहने की आवाजें सुनाई दे रही थीं । ऐसे भयंकर मौसम में कैसे घर तक जायेंगे ? बाबा की ओर करुणा दृष्टि से देखते हुए उमाचरण ने कहा—"जरा पानी का वेग कम हो जाय तब—"

बात पूरी भी नहीं हुई थी कि बाबा ने कहा—"नहीं, तुरन्त रवाना हो जाओ देर मत करो ।"

इस आदेश की अवहेलना करने का साहस उन्हें नहीं हुआ । सहन पार करने के बाद मंगलदास से मुलाकात हुई । उसे अपनी मुसीबत कहने की गरज से उमाचरण ने कहा—"बाहर घना अंधकार है । पानी रुक भी नहीं रहा है । ऐसे भयंकर मौसम में बाबा का आदेश हुआ कि तुरन्त घर चले जाओ । अब आप ही बताइये घर कैसे जाऊँ ?"

मंगलदास ने कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है, बंगाली बाबू । आप बाबा का नाम लेकर रवाना हो जाइये । इस आदेश के पीछे कोई रहस्य है, वर्ना वे ऐसा न कहते ।"

मंगलदास की सलाह से उमाचरण को विश्वास हो गया । वे बाबा के पास आकर उनका चरण-स्पर्श कर मूसलाधार बारिश में रवाना हो गये । बाहर गलियों में घुटने भर पानी जमा था । अंधेरा होने के कारण सामने कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । तेज बारिश के कारण कान सुन्न पड़ गये । लेकिन इस यात्रा में उन्हें विचित्र अनुभव हुआ । वर्षा का एक बूँद जल भी उनके शरीर पर नहीं गिर रहा था । लगता था जैसे सिर के ऊपर बड़ी छतरी लगाये हुए हैं । कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक गली से एक आदमी आगे-आगे लालटेन लेकर चलने लगा । इस भयंकर अंधेरे में रोशनी का सहारा पाकर उमाचरण आश्वस्त हो गये ।

आगे-आगे चलनेवाले व्यक्ति को कई बार आवाज दी ताकि उसके साथ-साथ चलें, पर उसने सुना नहीं । उन्होंने सोचा—शायद तेज बारिश के कारण उसे मेरी आवाज सुनाई नहीं दी । वे स्वयं तेजी से आगे बढ़ने लगे ताकि उसके पास पहुँच जायँ । इधर उमाचरण तेजी से चलने लगे तो लालटेन वाले व्यक्ति की गति भी तेज हो गयी । दोनों व्यक्तियों के फासले में कोई कमी नहीं हुई ।

अन्त में थककर अपनी चाल से वे चलने लगे । आश्चर्य की बात यह रही कि लालटेन वाला व्यक्ति उनके आगे-आगे उन्हीं मार्गों से चलता रहा, जिस रास्ते वे घर जाते हैं । घर के पास आते ही लालटेन वाला व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया । समझते देर नहीं लगी कि यह चमत्कार बाबा की कृपा से हुआ है । यही वजह है कि बाबा ने इस दुर्योग में जाने का आदेश दिया था ।

नियमानुसार दूसरे दिन उमाचरण को बाबा के साथ गंगा-स्नान के लिए जाना पड़ा । बाबा अपने ढंग से स्नान करते हैं । कम-से-कम दो घंटे लगते हैं । कभी बहाव के उल्टी तरफ तैरते हैं, कभी शवासन लगाये भासमान रहते हैं और कभी पानी में डुबकी लगाकर न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं । जबतक बाबा पानी से बाहर नहीं निकलते तबतक उमाचरण को घाट की सीढ़ियों पर बैठकर उनके आने का इन्तजार करना पड़ता है ।

उस दिन बाबा जब स्नान करके ऊपर आये तब उनका शरीर उमाचरण ने रोज की तरह पोंछ दिया । बाद में आश्रम पर आ गये । आश्रम में आकर उन्होंने कहा—"आज तुम्हें दीक्षा दूँगा । शान्त होकर बैठो ।"

पहले बाबा ने कुछ क्रियाएँ बतायीं । इसके बाद कान में बीज मंत्र सुनाया । बोले—"इसी मंत्र का जाप करते रहना ।"

कुछ देर ठहरकर बोले—"अब कुछ महत्त्व की बातें बता रहा हूँ, इन्हें ध्यान से सुनो । इन बातों का पालन करते रहना । जिस कार्य के लिए जितना बोलना हो, उतना ही कहना । व्यर्थ की बातें मत करना । इससे तेज क्षय होता है । किसी धर्म से द्वेष मत करना । जिसे जिस धर्म पर विश्वास है, उसे उसी धर्म से मुक्ति मिलती है । आहारादि से धर्म नष्ट नहीं होता, केवल मुक्ति पाने में देर होती है । मुसलमानों को भी मुक्ति प्राप्त होती है । व्याकुल भाव से उन्हें जो पुकारेगा, वह उन्हें प्राप्त करेगा । जिन घटनाओं को देखकर तुम चकित हुए हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । मनुष्य अगर वास्तविक मनुष्य हो तो वह भी यह सब कार्य कर सकता है । केवल आहार-विहार करने के लिए मनुष्य की सृष्टि नहीं हुई है । भगवान् में जितनी शक्ति है, मनुष्य में भी वही शक्तियाँ हैं । भगवान् ने मनुष्य को यह सब शक्तियाँ देकर उसे श्रेष्ठ बनाया है । कोई भी व्यक्ति उस शक्ति का उपयोग करना नहीं जानता । भगवान् हमेशा हमारे साथ रहते हैं । उन्हें जानने या देखने की इच्छा किसी को नहीं होती ।"

स्वामी के इस कथन के बाद ही उमाचरण ने पूछा—"सचमुच क्या ईश्वर का दर्शन मिल सकता है ?"

स्वामीजी ने कहा—"साधना करने पर गुरु-कृपा से दर्शन मिल सकता है । क्या तुम प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हो ?"

उमाचरण ने कहा—"प्रभो, तब तो मैं धन्य हो जाऊँगा । मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि स्वयं भगवान् को गुरु के रूप में प्राप्त किया है । बिना भगवान् के भगवान् का दर्शन कैसे हो सकता है ?"

"इस वक्त जाओ । दिन ढले, शाम को आना ।"

गुरु की इस आज्ञा को मानकर उसी दिन शाम को उमाचरण आश्रम पर आये । थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने कहा—"बगल के कमरे में काली की मूर्ति है । जाओ, दर्शन कर आओ ।"

स्वामीजी की आज्ञा के अनुसार उमाचरण वेदी की बगल वाली कोठरी में गये । भीतर माँ काली की पत्थर की मूर्ति थी । मूर्ति को प्रणाम करने के बाद वे चुपचाप आकर बैठ गये ।

"क्या माँ को यहाँ देखना चाहते हो ?"

"गुरुदेव, क्या मेरा ऐसा सौभाग्य है जो उन्हें यहाँ देख सकूँगा ? माँ को देखना और जगत्माता को देखना बराबर है । अगर आप इस दीन के प्रति कृपा करें तो कृतार्थ होऊँगा ।"

उमाचरण को स्थिर भाव में बैठने को कहकर स्वामीजी ध्यानस्थ हो गये । लगभग एक घंटे बाद उनका ध्यान भंग हुआ । उमाचरण ने प्रत्यक्ष रूप में देखा—कुमारी बालिका की भांति उक्त पाषाणमयी माँ धीरे-धीरे चलकर उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं । दीपक के प्रकाश में चैतन्यमयी, सर्वमंगला, विश्वरूपिणी जगत्माता प्रत्यक्ष रूप में दण्डायमान हैं । उमाचरण सचेतन होते हुए अचेतन हो गये ।

स्वामीजी ने हंसकर कहा—"अब तुम भीतर जाकर देख आओ, जहाँ काली मूर्ति थी, वहाँ है या नहीं ?"

वे भयभीत और विह्वल भाव से भीतर गये तो देखा—वहाँ देवी-मूर्ति नहीं है । यह देखकर वे और भी भयभीत हो उठे और तेजी से चलकर स्वामीजी के निकट आ गये । अब गौर से मूर्ति को वे देखने लगे । इस समय देवी की जीभ बाहर नहीं निकली हुई थी और न पैरों के नीचे महादेव थे । बाबा के आज्ञानुसार उन्होंने माँ के चरणों को स्पर्श कर चरण-रज सिर से लगाया । चरण-स्पर्श करते समय मनुष्यों की भांति नरम अनुभव हुआ । देर तक वे देवी-मूर्ति को देखते रहे । इसके बाद बाबा ने माँ को भीतर जाने का इशारा किया । माँ धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गयीं ।

उमाचरण ने पूछा—"गुरुदेव, पाषाण-मूर्ति कैसे चल रही थी ? जो कुछ मैंने देखा, क्या वह सत्य था ?"

स्वामीजी ने कहा—"तुम्हारा जड़ शरीर कैसे चलता है ?"

उमाचरण—"मनुष्य के शरीर में आत्मा और चैतन्य दोनों है, इसलिए यह चलता है ।"

स्वामीजी—"सिद्ध-साधकों के गुण से मिट्टी, धातु तथा पाषाण में आत्मा और चैतन्य का संचार हो जाता है, इसलिए मूर्तियाँ चलने लगती हैं, बोलने लगती हैं और कार्य करती हैं ।"

दूसरे दिन गंगा-स्नान करने के बाद स्वामीजी ने कहा—"आज रात को एक बार आना । इसके बाद तुम्हें यहाँ आने की जरूरत नहीं होगी ।"

उसी दिन रात को उमाचरण जब आये तब स्वामीजी ने उन्हें प्रसाद खिलाया । इसके बाद कुछ प्रणालियों के बारे में समझाया जिससे आत्मदर्शन होता है । बोले—"आज से तुम बंधन में फंस गये । इन क्रियाओं को नित्य करते रहना । अगर लापरवाही करोगे तो मुझे करना पड़ेगा । दिन को अवसर न मिले तो रात को करना । रात को न मिले तो भोर में करना, पर करना अवश्य । समय नहीं मिलता,

यह बहाना मत करना । अगर लापरवाही करोगे तो मुझे पता चल जायगा । धर्म के विषय में किसी से बहस मत करना । मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा कुछ नहीं है, इस बात को हमेशा याद रखना । 'मैं' नामक जो देह है, यह कुछ नहीं है । सब ईश्वर की देह है ।"

इसके बाद उन्होंने कहा—"अब तुम अपनी आँखें बन्द कर लो । जब पुकारूँ तब खोलना ।"

इतना कहकर स्वामीजी ध्यानस्थ हो गये । लगभग एक घंटे बाद स्वामीजी ने उमाचरण को पुकारते हुए कहा—"अब आँखें खोलो और बताओ कि इस वक्त हम कहाँ हैं ?"

उमाचरण ने देखा कि वे उस कमरे में नहीं हैं जिसमें अभी कुछ देर पहले थे । इस वक्त गंगा के गर्भ में हैं । एक पलंग पर गुरुदेव बैठे हैं और वे पलंग के एक किनारे हैं । पलंग पर सफेद गद्दा, तोशक और चादर बिछी है । तीन ओर तीन मसनद हैं । एक मसहरी टंगी है । गुरुदेव लेटे हुए हैं ।

उमाचरण ने सारी बातें बतायीं तब स्वामीजी ने कहा—"अगर हम गंगा के भीतर हैं तो गंगा में पानी है या नहीं, यह देखो ।"

उमाचरण ने झुककर अपने हाथ से पानी का स्पर्श किया । उन्हें भय लगा कि कहीं पलंग सहित पानी में डूब न जाय । वे स्वामीजी को स्पर्श कर बैठे रहे । थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने कहा—"अब पुनः अपनी आँखें बन्द कर लो ।"

आज्ञानुसार उमाचरण ने अपनी आँखें बन्द कर ली । कुछ देर बाद गुरुदेव ने कहा—"अब अपनी आँखें खोलकर बताओ कि हम कहाँ हैं ?"

इस बार आँखें खोलने पर उन्होंने देखा कि आश्रम के उसी कमरे में हैं जहाँ इसके पूर्व थे । सामने बाबा लेटे हुए हैं । उमाचरण को यह स्वप्न जैसा लगा । बाबा उमाचरण की ऊहापोह स्थिति को समझते हुए बोले—"यह आश्चर्य की बात नहीं है । मनुष्य अगर वास्तविक मनुष्यत्व प्राप्त कर ले तो उसकी जैसी इच्छा होगी, वह वैसा कर सकता है । यह सब दिखाने का कारण यह है कि तुममें दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाय । ऐसी बातें तुम स्वयं आयत्व कर सकते हो ।"

२५ चैत के दिन बाबा ने कहा—"यहाँ जो कुछ तुमने देखा या सुना, इसे किसी अविश्वासी के सामने मत प्रकट करना । धर्म का सहारा लेकर दिन गुजारना । असली काम में गफलत न हो । तुम्हें सब समझा दिया और लिखा दिया । अब तुम्हें ठहरने की जरूरत नहीं है । जहाँ नौकरी करते थे, वहीं चले जाओ । तुम विवाहित हो, पत्नी तथा बच्चों का पालन-पोषण तुम्हें ही करना है ।"

गुरुदेव की आज्ञा मानकर उमाचरणजी विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए मुंगेर आ गये और अपने गुरुदेव का प्रचार करने लगे ।

× × ×

काशी में भवानी चरण वाचस्पति नामक एक सज्जन थे जो एक अर्से से कालाज्वर से भुगत रहे थे । शारीरिक तथा मानसिक रूप से पीड़ित थे । मित्रों के सुझाव पर बाबा के पास आये और कष्ट से मुक्ति पाने की प्रार्थना की ।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"चलो, जरा भांग पीसो ।"

वाचस्पति महाराज सिल-लोढ़ा लेकर भांग पीसने लगे । पिस जाने पर बाबा ने मटर बराबर गोली देते हुए कहा—"इसे खा जाओ । कल से रोज़ इसी समय आना । यहाँ तुम्हें भांग पीसना और खाना पड़ेगा ।"

वाचस्पति बाबा की इस आज्ञा को सुनकर स्तंभित रह गये । उन्हें यह मालूम था कि बाबा लोग भांग-गांजे का सेवन करते हैं, पर जो नहीं खाता, उसे भी खिलाते हैं । अब वे नित्य आते, भांग पीसते, मटर बराबर गोली खाने के बाद घर चले जाते थे । यह क्रम लगातार एक माह तक जारी रहा । एक दिन जब वाचस्पति आये तो बाबा ने कै कर दी । इसके बाद उनसे कहा गया कि इस जगह को साफ कर दो ।

आदेश के अनुसार बिना हिचके सर्वत्र धोकर उन्होंने स्थान को साफ कर दिया । बाद में भांग पीसने का कार्यक्रम चालू हुआ ।

इसी प्रकार एक दिन बाबा ने काफी मात्रा में टट्टी कर दी । वाचस्पति के आने पर सफाई करने को कहा गया । इस बार भी बिना हिचके उन्होंने सफाई कर दी । इसके बाद भांग पीसी और खायी गयी ।

इस घटना के दूसरे दिन बाबा ने भांग की गोली खिलाने के बाद कहा—"अब कल से तुम यहाँ मत आना ।"

'क्यों बाबा ?'

बाबा ने कहा—"चार दिन बाद तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे । इसी कष्ट के लिए तो यहाँ आते रहे ? "

चार दिन के बाद वाचस्पति पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये ।

× × ×

उमाचरण जिस दवा कम्पनी में काम करते थे, वहाँ एक मजेदार घटना हुई । कम्पनी के मैनेजर महेन्द्रनाथ घोष ने एक दिन कहा—"उमाचरण, रोकड़ में छः सौ रुपये की कमी है । याद करो, यह रकम किसी को दी गयी है या लिखने में भूल हो गयी है ?"

इन दोनों व्यक्तियों के जिम्मे हिसाब-किताब और लेन-देन की जिम्मेदारी रहती है । उमाचरण उसी कमरे में रहते थे, जिसमें कार्यालय की सारी चाभियाँ रहती हैं । दोनों व्यक्तियों ने श्रम करके खोजा, पर कुछ पता नहीं चला । दोनों ही यह संदेह करने लगे कि हम दोनों में कोई चोर है । धीरे-धीरे तीन माह गुजर गये, पर कोई सुराग नहीं मिला । नौकरी से बढ़कर गबन का प्रश्न दोनों को परेशान करने लगा ।

अन्त में इस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए उमाचरणजी काशी चले आये। सोचा, बाबा को सारी बातें बताकर मुक्ति का उपाय पूछ लूँगा।

आश्रम में आकर ज्योंही वे बाबा को प्रणाम करके एक ओर बैठे, त्योंही बाबा ने कहा—"क्यों बेटा, कार्यालय में रुपयों की गड़बड़ी करके यहाँ पता लगाने आये हो ?"

उमाचरणजी बाबा की एषणा-शक्ति से परिचित थे। उन्होंने दबी जबान से कहा—'जी हाँ।'

स्वामीजी ने कहा—"जैसे तुम लापरवाह हो, वैसे ही तुम्हारे सहयोगी हैं। अमुक महीने के अमुक तारीख को पांच सौ रुपये भेजे गये हैं। कलकत्ता के नरसिंह दत्त को ३०० रुपये और स्टैनिस्ट्रीट कम्पनी को २०० रुपये। तुमने ड्राफ्ट बनवाया और रजिस्ट्री भी की थी। रसीद अमुक फाइल में है। उन लोगों ने प्राप्ति सूचना की रसीद भी भेजी, जो फाइल में है। लेकिन दोनों रकम रोकड़ में दर्ज नहीं है। रहा अब एक सौ रुपये का सवाल। उसे घोष महाशय स्वयं ही खोज निकालेंगे।"

इसके बाद स्वामीजी बिगड़कर बोले—"तुम्हें मैंने मना किया था कि मेरे बारे में कहीं किसी से कोई चर्चा मत करना। मुंगेर में जाकर तुमने प्रचार किया। फलस्वरूप वहाँ से काफी लोग यहाँ दीक्षा लेने चले आते हैं। मैं इन लोगों से तंग आ गया हूँ। अब तुम मुंगेर में नहीं रह सकोगे। अब यहाँ से वापस जाकर चीफ इंजीनियर, शिलांग, आसाम के पते पर एक आवेदन पत्र भेज देना। वहाँ से स्वीकृति पत्र आते ही वहाँ चले जाना।"

उमाचरण ने कहा—"गुरुदेव मैंने प्रचार नहीं किया है। यह सत्य है कि आपके बारे में मैंने अपने दो-चार मित्रों से चर्चा की थी।"

स्वामीजी ने कहा—"एक बात जान लो। मैं पांच-छः माह के भीतर देहत्याग करूंगा। समाचार भेजूंगा तब आना। कल ही तुम मुंगेर चले जाओ।"

मुंगेर आकर घोष महाशय से सारी बातें कहने पर फाइलों की जाँच की गयी। अब एक सौ रुपये की समस्या रह गयी। अचानक एक दिन घोष बाबू प्रसन्नता से चीख उठे—"मुखर्जी बाबू, मिल गया! एक सौ का भी हिसाब मिल गया।"

'कहाँ मिला ?'

घोष महाशय ने कहा—"अभी कुछ रोज पहले आफिस के सामानों की रंगाई हुई थी। सन्दूक में ताजा रंग लगा था। सो उसमें सौ रुपये का नोट चिपक गया। यह देखो, नोट में रंग के दाग हैं। आपके गुरुदेव ने ठीक ही कहा था। आप ऐसे गुरु के शिष्य हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है।"

उमाचरण ने आसाम में आवेदन पत्र भेज दिया। वहाँ से बुलावा आया। इस सूचना को सुनकर मुंगेर की कम्पनी के मालिक ने इनका वेतन बढ़ाने का प्रस्ताव रखा।

अन्त में गुरुदेव की आज्ञा मानकर उमाचरण को आसाम जाना पड़ा। यहाँ गोलाघाट में काम करते समय एक युवक से परिचय हुआ। बातचीत से मालूम हुआ

कि इस युवक का विवाह उसी घर में हुआ है जहाँ उमाचरण अपने पूर्व जीवन में रहते थे । यह जानकर उन्हें उत्सुकता हुई कि पूर्व-जन्म में उसी घर के दक्षिणवाले दरवाजे के ऊपर संस्कृत में जो श्लोक लिखा था, वह है या नहीं ।

युवक ने कहा—"मुखर्जी बाबू, मुझे कुल जमा दो सौ रुपये वेतन मिलता है । यहाँ से जाने और वापस लौटने में पूरे माह का वेतन समाप्त हो जायगा । अगर बहुत जरूरी हो तो पत्र के द्वारा पूछ लें ।"

युवक का प्रस्ताव उमाचरण को पसन्द आया । युवक के श्वशुर को इस आशय का पत्र लिखा गया—"हम लोग आपके यहाँ आनेवाले थे, पर कार्याधिक्य के कारण नहीं आ पा रहे हैं । आपको एक कष्ट दे रहा हूँ । अगर आप यह कार्य कर दें तो आभारी रहूँगा । आपके मकान के दक्षिण दिशा में जो दरवाजा है, उसके ऊपर संस्कृत में कई श्लोक लिखे हैं । कृपया उसकी नकल शीघ्र भिजवा दें । हमें जब भी मौका मिलेगा, आपका दर्शन करूंगा ।"

कुछ ही दिनों में तीन श्लोक सहित उत्तर आया—

१. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानी देही ।।

२. रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषाम् ।
नृणमेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।

३. निर्ममस्या प्रेमयस्य निष्कलस्या शरीरिणः ।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पना ।।

अर्थात्—मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र को त्यागकर नूतन वस्त्र धारण करता है, वैसे ही देह धारण करनेवाले जीव शरीर को त्यागकर नूतन शरीर का आश्रय लेता है ।

नदियाँ जैसे नानापथगामी होने पर भी अन्त में एक ही समुद्र में लीन होती हैं, वैसे ही मनुष्यों की प्रवृत्ति तथा उपासना के पथ पृथक होने पर भी अन्त में ब्रह्म प्राप्ति ही सबका लक्ष्य है ।

ब्रह्म अहंकार व परिणाम शून्य, नित्य शुद्ध, शरीर हीन होने पर भी साधकों के हित के लिए नाना रूपों में कल्पित होते हैं ।

इस श्लोक को पाकर उमाचरण फूले नहीं समाये । पदे-पदे गुरुदेव सहायता कर रहे हैं ।

सन् १८८७ ई० के अगहन महीने के दिन उमाचरण के नाम काशी से गुरुदेव का एक पत्र आया—"अब एक माह बाद इस शरीर को त्याग दूंगा । शिष्य, सेवक आदि सभी को यह समाचार दिया जा चुका है । तुम्हें भी दे रहा हूँ । दरख्वास्त देने पर तुम्हें छुट्टी मिल जायगी । आना अवश्य ।"

यहाँ आने पर उमाचरण को पता लगा कि गुरुदेव द्वारा निर्धारित तिथि आने में अब केवल दस दिन शेष रह गये हैं । स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में कालीचरण स्वामी,

सदानन्द स्वामी, भोलानन्द स्वामी, दो अन्य परमहंस, मंगलदास तथा स्थानीय शिष्यों के अलावा अनेक भक्त काशी आ गये थे ।

समाधि लेने के कई दिन पहले उन्होंने आदेश दिया—"मेरे नाप का एक बक्स तैयार कराओ ताकि मुझे उसमें लिटा सको । बक्स में लिटाकर उसे स्क्रू से कस देना और ताला लगा देना । पंचगंगा घाट के सामने अमुक स्थान में बक्स को गिरा देना ।"

समाधि लेने के पूर्व दिन तक वे आगत लोगों को उपदेश देते रहे । स्वामीजी प्रफुल्लित रहे, पर अन्य लोगों की आकृति पर विषाद की रेखाएँ नृत्य करती रहीं ।

देह-त्याग के एक दिन पहले स्वामीजी ने एक अन्य आदेश दिया—"कल एक नाव किराये पर ले लेना । जब देहत्याग हो जाय तब सन्दूक में बन्दकर अस्सी से वरुणा तक भ्रमण कराने के बाद पंचगंगा घाट के सामने जिस स्थान के बारे में कहा है, उसी निर्दिष्ट स्थान पर गिरा देना ।"

निर्दिष्ट दिन राजघाट से लेकर अस्सी घाट तक काशी के शोकाकुल नागरिकों की अपार भीड़ एकत्रित हो गयी थी । सबसे अधिक भीड़ पंचगंगा घाट पर थी । इस नगरी में आज तक किसी संन्यासी ने पूर्वनिश्चय के अनुसार जल-समाधि नहीं ली थी ।

पौष शुक्ल की एकादशी तिथि थी, सन् १८८७ ई० । बाबा के निर्देशानुसार उन्हें सन्दूक में बन्दकर नाव पर रखा गया । इसके बाद पंचगंगा घाट से अस्सी और अस्सी घाट से राजघाट तक परिक्रमा कराने के बाद पंचगंगा घाट स्थित निर्दिष्ट स्थान पर उन्हें जलसमाधि दे दी गयी ।

पंचगंगा घाट पर भट्ट परिवार के भवन में स्वामीजी द्वारा स्थापित शिवलिंग और कालीमाता की मूर्ति है । आगे चलकर स्वामीजी की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की गयी है ।

ओं आप्यायन्तु ममंगानि, वाक् प्राणाश्चक्षुः श्रोत्रमथः बलनिन्द्रियाणी च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मोपनिषदं । माहहं ब्रह्म निराकुर्यां, मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्तु अनिराकरणं मेहस्तु । तदात्मनि निरते ये उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति ।।

मेरे अंग समूह वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत बल और सभी इन्द्रियाँ पुष्ट हों । वस्तु मात्र ही स्वरूपतः उपनिषत् प्रतिपाद्य ब्रह्म है । मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, ब्रह्म मुझे कभी अस्वीकार न करें, उनके साथ मेरा एवं मेरे साथ उनका नित्य अविच्छेद सम्बन्ध स्थापित हो । उसी परमात्मा में सतत निष्ठ मुझमें उपनिषत्-प्रतिपाद्य धर्म-समूह प्रकाशित हो, मुझमें वह प्रकट हो । शान्ति, शान्ति, शान्ति हो ।।

अध्यात्म, योग एवं जीवन-चरित

तुकाराम गाथा (संतश्रेष्ठ तुकाराम के चुने हुए अभंगों का हिन्दी भावानुवाद)	*अनु० ना०वि० सप्रे*
काशी के विद्यारत्न संन्यासी	*पं० बलदेव उपाध्याय*
श्री श्री सिद्धिमाता	*राजबाला देवी*
ब्रह्मर्षि देवराहा-दर्शन	*डॉ० अर्जुन तिवारी*
अघोर पंथ और संत कीनाराम	*डॉ० सुशीला मिश्र*
शिवस्वरूप बाबा हैड़ाखान	*सद्गुरुप्रसाद श्रीवास्तव*
करुणामूर्ति बुद्ध	*डॉ० गुणवन्त शाह*
प्रकाश-पथ का यात्री (एक सिद्ध योगी की आत्मकथा)	*योगेश्वर*
महामानव महावीर	*डॉ० गुणवन्त शाह*
नीब करौरी के बाबा	*डॉ० बदरीनाथ कपूर व परीक्षित कुमार चोपड़ा*
बाबा नीब करौरी के अलौकिक प्रसंग	*बच्चन सिंह*
सोमबारी महाराज (उत्तराखण्ड की अनन्य विभूति)	*हरिश्चन्द्र मिश्र*
समर्थ रामदास	*ना०वि० सप्रे*
स्वामी दयानन्द जीवनगाथा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*
तथागत (आत्मकथात्मक उपन्यास)	*डॉ० बाबूराम त्रिपाठी*
मनीषी की लोकयात्रा (म०म०पं० गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन)	*डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह*
योगिराजाधिराज श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस	*अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न*
योगिराज विशुद्धानन्द प्रसंग तथा तत्त्व कथा	*पं० गोपीनाथ कविराज*
सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	*नन्दलाल गुप्त*
भारत के महान योगी (14 भाग : 7 जिल्द)	*विश्वनाथ मुखर्जी*
भारत की महान साधिकाएँ	*विश्वनाथ मुखर्जी*
महाराष्ट्र के संत-महात्मा	*ना०वि० सप्रे*
महाराष्ट्र के कर्मयोगी	*ना०वि० सप्रे*
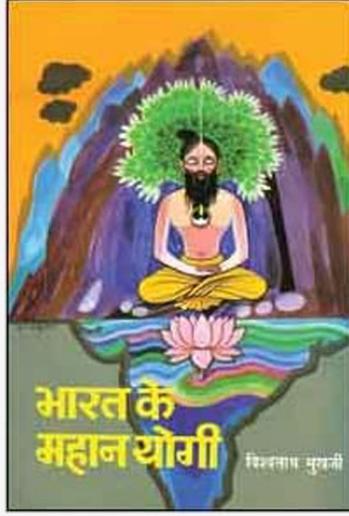
यह संतों, योगियों, तांत्रिकों तथा मनीषियों का देश है। किन्तु आज वे इतिहास के पात्र बन चुके हैं। उनकी अलौकिक गाथाएँ यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं, उनको एकत्र कर उन लुप्त प्राय सूत्रों को जोड़कर लेखक ने चौदह भागों (सात जिल्द-प्रत्येक में दो भाग) में लगभग ९० योगियों का जीवन चरित प्रस्तुत किया है। अत्यन्त सरल तथा सुबोध शैली में लिखी गई ये गाथाएँ अत्यन्त रोचक हैं। एक भाग पढ़ने से आपकी जिज्ञासा बढ़ती जायगी और आप सभी भाग अवश्य पढ़ना चाहेंगे।

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**

₹ 50.00
ISBN:978-81-89498-62-7